शवाकारमञ्चाधिरूढा शिवाभि-
श्चतुर्दिक्षुशब्दायमानाऽभिरेजे ॥ ३ ॥

स्तुतिः

विरञ्च्यादिदेवास्त्रयस्ते गुणांस्त्रीन्
समाराध्य कालीं प्रधाना बभूवुः।
अनादिं सुरादिं मखादिं भवादिं
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः ॥ ४ ॥
जगन्मोहनीयं तु वाग्वादिनीयं
सुहृत्पोषिणीशत्रुसंहारणीयम् ।
वचस्तम्भनीयं किमुच्चाटनीयं
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः ॥ ५ ॥
इयं स्वर्गदात्री पुनः कल्पवल्ली
मनोजास्तु कामान् यथार्थं प्रकुर्यात्।

शवरूपी मंचपर ये आसीन हैं और चारों दिशाओंमें भयानक शब्द करती हुई सियारिनोंसे घिरी हुई सुशोभित हैं ॥ ३ ॥

स्तुति

ब्रह्मा आदि तीनों देवता आपके तीनों गुणोंका आश्रय लेकर तथा आप भगवती कालीकी ही आराधना कर प्रधान हुए हैं। आपका स्वरूप आदिरहित है, देवताओंमें अग्रगण्य है, प्रधान यज्ञस्वरूप है और विश्वका मूलभूत है; आपके इस स्वरूपको देवता भी नहीं जानते ॥ ४ ॥

आपका यह स्वरूप सारे विश्वको मुग्ध करनेवाला है, वाणीद्वारा स्तुति किये जानेयोग्य है, यह सुहृदोंका पालन करनेवाला है, शत्रुओंका विनाशक है, वाणीका स्तम्भन करनेवाला है और उच्चाटन करनेवाला है; आपके इस स्वरूपको देवता भी नहीं जानते ॥ ५ ॥

ये स्वर्गको देनेवाली हैं और कल्पलताके समान हैं। ये भक्तोंके मनमें उत्पन्न होनेवाली कामनाओंको यथार्थरूपमें पूर्ण करती हैं।

तथा ते कृतार्था भवन्तीति नित्यं
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः ॥ ६ ॥
सुरापानमत्ता सुभक्तानुरक्ता
लसत्पूतचित्ते सदाविर्भवत्ते ।
जपध्यानपूजासुधाधौतपङ्का
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः ॥ ७ ॥
चिदानन्दकन्दं हसन् मन्दमन्दं
शरच्चन्द्रकोटिप्रभापुञ्जबिम्बम् ।
मुनीनां कवीनां हृदि द्योतयन्तं
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः ॥ ८ ॥
महामेघकाली सुरक्तापि शुभ्रा
कदाचिद् विचित्राकृतिर्योगमाया ।

और वे सदाके लिये कृतार्थ हो जाते हैं; आपके इस स्वरूपको देवता भी नहीं जानते ॥ ६ ॥

आप सुरापानसे मत्त रहती हैं और अपने भक्तोंपर सदा स्नेह रखती हैं। भक्तोंके मनोहर तथा पवित्र हृदयमें ही सदा आपका आविर्भाव होता है। जप, ध्यान तथा पूजारूपी अमृतसे आप भक्तोंके अज्ञानरूपी पंकको धो डालनेवाली हैं; आपके इस स्वरूपको देवता भी नहीं जानते ॥ ७ ॥

आपका स्वरूप चिदानन्दघन, मन्द-मन्द मुसकानसे सम्पन्न, शरत्कालीन करोड़ों चन्द्रमाके प्रभासमूहके प्रतिबिम्ब-सदृश और मुनियों तथा कवियोंके हृदयको प्रकाशित करनेवाला है; आपके इस स्वरूपको देवता भी नहीं जानते ॥ ८ ॥

आप प्रलयकालीन घटाओंके समान कृष्णवर्णा हैं, आप कभी रक्तवर्णवाली तथा कभी उज्ज्वलवर्णवाली भी हैं। आप विचित्र आकृतिवाली तथा

न बाला न वृद्धा न कामातुरापि
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः॥ ९॥
क्षमस्वापराधं महागुप्तभावं
मया लोकमध्ये प्रकाशीकृतं यत्।
तव ध्यानपूतेन चापल्यभावात्
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः॥ १०॥

फलश्रुतिः

यदि ध्यानयुक्तं पठेद् यो मनुष्य-
स्तदा सर्वलोके विशालो भवेच्च।
गृहे चाष्टसिद्धिर्मृते चापि मुक्तिः
स्वरूपं त्वदीयं न विन्दन्ति देवाः॥ ११॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीकालिकाष्टकं सम्पूर्णम्॥

योगमायास्वरूपिणी हैं। आप न बाला, न वृद्धा और न कामातुरा युवती ही हैं; आपके इस स्वरूपको देवता भी नहीं जानते॥ ९॥

आपके ध्यानसे पवित्र होकर चंचलतावश इस अत्यन्त गुप्तभावको जो मैंने संसारमें प्रकट कर दिया है, मेरे इस अपराधको आप क्षमा करें; आपके इस स्वरूपको देवता भी नहीं जानते॥ १०॥

फलश्रुति

यदि कोई मनुष्य ध्यानयुक्त होकर इसका पाठ करता है, तो वह सारे लोकोंमें महान् हो जाता है। उसे अपने घरमें आठों सिद्धियाँ प्राप्त रहती हैं और मरनेपर मुक्ति भी प्राप्त हो जाती है; आपके इस स्वरूपको देवता भी नहीं जानते॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित श्रीकालिकाष्टक सम्पूर्ण हुआ॥

सरस्वतीस्तोत्राणि

२५—श्रीसरस्वतीस्तोत्रम्

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥ १॥

आशासु राशीभवदङ्गवल्ली-
भासैव दासीकृतदुग्धसिन्धुम्।
मन्दस्मितैर्निन्दितशारदेन्दुं
वन्देऽरविन्दासनसुन्दरि त्वाम्॥ २॥

शारदा शारदाम्भोजवदना वदनाम्बुजे।
सर्वदा सर्वदास्माकं सन्निधिं सन्निधिं क्रियात्॥ ३॥

जो कुन्दके फूल, चन्द्रमा, बर्फ और हारके समान श्वेत हैं; जो शुभ्र वस्त्र धारण करती हैं; जिनके हाथ उत्तम वीणासे सुशोभित हैं; जो श्वेत कमलासनपर बैठती हैं; ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देव जिनकी सदा स्तुति करते हैं और जो सब प्रकारकी जड़ता हर लेती हैं, वे भगवती सरस्वती मेरा पालन करें॥ १॥

हे कमलपर बैठनेवाली सुन्दरी सरस्वति! तुम सब दिशाओंमें पुंजीभूत हुई अपनी देहलताकी आभासे ही क्षीर-समुद्रको दास बनानेवाली और मन्द मुसकानसे शरद् ऋतुके चन्द्रमाको तिरस्कृत करनेवाली हो, तुमको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २॥

शरत्कालमें उत्पन्न कमलके समान मुखवाली और सब मनोरथोंको देनेवाली शारदा सब सम्पत्तियोंके साथ मेरे मुखमें सदा निवास करें॥ ३॥

सरस्वतीं च तां नौमि वागधिष्ठातृदेवताम्।
देवत्वं प्रतिपद्यन्ते यदनुग्रहतो जनाः॥ ४॥
पातु नो निकषग्रावा मतिहेम्नः सरस्वती।
प्राज्ञेतरपरिच्छेदं वचसैव करोति या॥ ५॥
शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्ते स्फाटिकमालिकां च दधतीं पद्मासने संस्थितां
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्॥ ६॥
वीणाधरे विपुलमङ्गलदानशीले
भक्तार्तिनाशिनि विरञ्चिहरीशवन्द्ये।

वाणीकी अधिष्ठात्री उन देवी सरस्वतीको प्रणाम करता हूँ, जिनकी कृपासे मनुष्य देवता बन जाता है॥ ४॥

बुद्धिरूपी सोनेके लिये कसौटीके समान सरस्वतीजी, जो केवल वचनसे ही विद्वान् और मूर्खोंकी परीक्षा कर देती हैं; हमलोगोंका पालन करें॥ ५॥

जिनका रूप श्वेत है, जो ब्रह्मविचारकी परम तत्त्व हैं, जो सब संसारमें फैल रही हैं, जो हाथोंमें वीणा और पुस्तक धारण किये रहती हैं, अभय देती हैं, मूर्खतारूपी अन्धकारको दूर करती हैं, हाथमें स्फटिकमणिकी माला लिये रहती हैं, कमलके आसनपर विराजमान होती हैं और बुद्धि देनेवाली हैं, उन आद्या परमेश्वरी भगवती सरस्वतीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ६॥

हे वीणा धारण करनेवाली, अपार मंगल देनेवाली, भक्तोंके दुःख छुड़ानेवाली, ब्रह्मा, विष्णु और शिवसे वन्दित होनेवाली,

कीर्तिप्रदेऽखिलमनोरथदे महार्हे
विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम् ॥ ७ ॥
श्वेताब्जपूर्णविमलासनसंस्थिते हे
श्वेताम्बरावृतमनोहरमञ्जुगात्रे ।
उद्यन्मनोज्ञसितपङ्कजमञ्जुलास्ये
विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम् ॥ ८ ॥
मातस्त्वदीयपदपङ्कजभक्तियुक्ता
ये त्वां भजन्ति निखिलानपरान्विहाय ।
ते निर्जरत्वमिह यान्ति कलेवरेण
भूवह्निवायुगगनाम्बुविनिर्मितेन ॥ ९ ॥
मोहान्धकारभरिते हृदये मदीये
मातः सदैव कुरु वासमुदारभावे ।

कीर्ति तथा मनोरथ देनेवाली, पूज्यवरा और विद्या देनेवाली सरस्वति! तुमको नित्य प्रणाम करता हूँ॥ ७॥

हे श्वेत कमलोंसे भरे हुए निर्मल आसनपर विराजनेवाली, श्वेत वस्त्रोंसे ढके सुन्दर शरीरवाली, खिले हुए सुन्दर श्वेत कमलके समान मंजुल मुखवाली और विद्या देनेवाली सरस्वति! तुमको नित्य प्रणाम करता हूँ॥ ८॥

हे मातः! जो (मनुष्य) तुम्हारे चरणकमलोंमें भक्ति रखकर और सब देवताओंको छोड़कर तुम्हारा भजन करते हैं, वे पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश और जल—इन पाँच तत्त्वोंके बने शरीरसे ही देवता बन जाते हैं॥ ९॥

हे उदार बुद्धिवाली माँ! मोहरूपी अन्धकारसे भरे मेरे हृदयमें

स्वीयाखिलावयवनिर्मलसुप्रभाभिः
शीघ्रं विनाशय मनोगतमन्धकारम् ॥ १० ॥
ब्रह्मा जगत् सृजति पालयतीन्दिरेशः
शम्भुर्विनाशयति देवि तव प्रभावैः।
न स्यात्कृपा यदि तव प्रकटप्रभावे
न स्युः कथञ्चिदपि ते निजकार्यदक्षाः ॥ ११ ॥
लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टिर्गौरी तुष्टिः प्रभा धृतिः।
एताभिः पाहि तनुभिरष्टाभिर्मां सरस्वति ॥ १२ ॥
सरस्वत्यै नमो नित्यं भद्रकाल्यै नमो नमः।
वेदवेदान्तवेदाङ्गविद्यास्थानेभ्य एव च ॥ १३ ॥
सरस्वति महाभागे विद्ये कमललोचने।
विद्यारूपे विशालाक्षि विद्यां देहि नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥

सदा निवास करो और अपने सब अंगोंकी निर्मल कान्तिसे मेरे मनके अन्धकारका शीघ्र नाश करो ॥ १० ॥

हे देवि! तुम्हारे ही प्रभावसे ब्रह्मा जगत्‌को बनाते हैं, विष्णु पालते हैं और शिव विनाश करते हैं। हे प्रकटप्रभावशाली! यदि इन तीनोंपर तुम्हारी कृपा न हो, तो वे किसी प्रकार अपना काम नहीं कर सकते ॥ ११ ॥

हे सरस्वति! लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा, धृति—इन आठ मूर्तियोंसे मेरी रक्षा करो ॥ १२ ॥

सरस्वतीको नित्य नमस्कार है, भद्रकालीको नमस्कार है और वेद, वेदान्त, वेदांग तथा विद्याओंके स्थानोंको प्रणाम है ॥ १३ ॥

हे महाभाग्यवती ज्ञानस्वरूपा कमलके समान विशाल नेत्रवाली, ज्ञानदात्री सरस्वति! मुझको विद्या दो, मैं तुमको प्रणाम करता हूँ ॥ १४ ॥

यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि॥ १५॥

॥ इति श्रीसरस्वतीस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

२६—श्रीसिद्धसरस्वतीस्तोत्रम्

ध्यानम्

दोर्भिर्युक्ताश्चतुर्भिः स्फटिकमणिमयीमक्षमालां दधाना
हस्तेनैकेन पद्मं सितमपि च शुकं पुस्तकं चापरेण।
या सा कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकमणिनिभा भासमाना समाना
सा मे वाग्देवतेयं निवसतु वदने सर्वदा सुप्रसन्ना॥ १॥
आरूढा श्वेतहंसे भ्रमति च गगने दक्षिणे चाक्षसूत्रं
वामे हस्ते च दिव्याम्बरकनकमयं पुस्तकं ज्ञानगम्या।

हे देवि! जो अक्षर, पद अथवा मात्रा छूट गयी हो, उसके लिये क्षमा करो और हे परमेश्वरि! प्रसन्न रहो॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीसरस्वतीस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

ध्यान

जो चार हाथोंमें सुशोभित हैं और उन हाथोंमें स्फटिकमणिकी बनी हुई अक्षमाला, श्वेत कमल, शुक और पुस्तक धारण किये हुई हैं। जो कुन्द, चन्द्रमा, शंख और स्फटिकमणिके सदृश देदीप्यमान होती हुई उनके समान उज्ज्वलवर्णा हैं, वे ही ये वाग्देवता सरस्वती परम प्रसन्न होकर सर्वदा मेरे मुखमें निवास करें॥ १॥

जो श्वेत हंसपर सवार होकर आकाशमें विचरण करती हैं, जिनके दाहिने हाथमें अक्षमाला और बायें हाथमें दिव्य स्वर्णमय वस्त्रसे आवेष्टित

सा वीणां वादयन्ती स्वकरकरजपैः शास्त्रविज्ञानशब्दैः
क्रीडन्ती दिव्यरूपा करकमलधरा भारती सुप्रसन्ना॥ २॥
श्वेतपद्मासना देवी श्वेतगन्धानुलेपना।
अर्चिता मुनिभिः सर्वैर्ऋषिभिः स्तूयते सदा॥ ३॥
एवं ध्यात्वा सदा देवीं वाञ्छितं लभते नरः॥ ४॥

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीसिद्धसरस्वतीस्तोत्रमन्त्रस्य मार्कण्डेय ऋषिः, स्रग्धरा अनुष्टुप् छन्दः, मम वाग्विलाससिद्ध्यर्थं पाठे विनियोगः।

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।

पुस्तकसे शोभित हैं, जो ज्ञानगम्या हैं, जो वीणा बजाती हुई और अपने हाथकी करमालासे शास्त्रोक्त बीजमन्त्रोंका जप करती हुई क्रीडारत हैं, जिनका दिव्य रूप है तथा जो हाथमें कमल धारण करती हैं, वे सरस्वती देवी मुझपर प्रसन्न हों॥ २॥

जो भगवती श्वेत कमलपर आसीन हैं, जिनके शरीरमें श्वेत चन्दनका अनुलेप है, मुनिगण जिनकी अर्चना करते हैं तथा सभी ऋषि सदा जिनका स्तवन करते हैं—इस प्रकार सदा देवीका ध्यान करके मनुष्य मनोवांछित फल प्राप्त कर लेता है॥ ३-४॥

विनियोग—इस श्रीसिद्धसरस्वतीस्तोत्रमन्त्रके मार्कण्डेय ऋषि हैं, स्रग्धरा अनुष्टुप् छन्द है, अपनी वाक्-शक्तिकी सिद्धिके लिये पाठमें विनियोग होता है।

जिनका रूप श्वेत है, जो ब्रह्मविचारकी परम तत्त्व हैं, आदि शक्ति हैं, सब संसारमें व्याप्त हैं, हाथोंमें वीणा और पुस्तक धारण किये रहती हैं, भक्तोंको अभय देती हैं, मूर्खतारूपी अन्धकारको दूर करती हैं,

हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थितां
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्॥ १॥
या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥ २॥
ह्रीं ह्रीं हृद्यैकबीजे शशिरुचिकमले कल्पविस्पष्टशोभे
भव्ये भव्यानुकूले कुमतिवनदवे विश्ववन्द्याङ्घ्रिपद्मे।
पद्मे पद्मोपविष्टे प्रणतजनमनोमोदसम्पादयित्रि
प्रोत्फुल्लज्ञानकूटे हरिनिजदयिते देवि संसारसारे॥ ३॥

हाथमें स्फटिक-मणिकी माला लिये रहती हैं, कमलके आसनपर विराजमान हैं और बुद्धि देनेवाली हैं, उन परमेश्वरी भगवती सरस्वतीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १॥

जो कुन्दके फूल, चन्द्रमा, हिम और हारके समान श्वेत हैं; जो शुभ्र वस्त्र धारण करती हैं; जिनके हाथ उत्तम वीणासे सुशोभित हैं; जो श्वेत कमलासनपर बैठती हैं; ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देव जिनकी सदा स्तुति करते हैं और जो सब प्रकारकी जड़ताका हरण कर लेती हैं, वे भगवती सरस्वती मेरी रक्षा करें॥ २॥

'ह्रीं ह्रीं'—इस एकमात्र मनोहर बीजमन्त्रवाली, चन्द्रमाकी कान्तिवाले श्वेत कमलके समान विग्रहवाली, प्रत्येक कल्पमें व्यक्तरूपसे सुशोभित होनेवाली, भव्य स्वरूपवाली, प्रिय तथा अनुकूल स्वभाववाली, कुबुद्धिरूपी वनको दग्ध करनेके लिये दावानलस्वरूपिणी, सम्पूर्ण जगत्के द्वारा वन्दित-चरणकमलवाली, कमलारूपा, कमलके आसनपर विराजमान रहनेवाली, शरणागतजनोंके मनको आह्लादित करनेवाली, महान् ज्ञानकी शिखरस्वरूपिणी, भार्यारूपमें भगवान् विष्णुकी आत्मशक्तिके रूपमें प्रतिष्ठित तथा संसारकी तत्त्वस्वरूपिणी हे देवि! (मैं आपकी स्तुति और वन्दना करता हूँ।) ॥ ३॥

ऐं ऐं ऐं दृष्टमन्त्रे कमलभवमुखाम्भोजभूते स्वरूपे
रूपारूपप्रकाशे सकलगुणमये निर्गुणे निर्विकारे।
न स्थूले नैव सूक्ष्मेऽप्यविदितविभवे नापि विज्ञानतत्त्वे
विश्वे विश्वान्तरात्मे सुरवरनमिते निष्कले नित्यशुद्धे॥ ४॥
ह्रीं ह्रीं ह्रीं जाप्यतुष्टे हिमरुचिमुकुटे वल्लकीव्यग्रहस्ते
मातर्मातर्नमस्ते दह दह जडतां देहि बुद्धिं प्रशस्ताम्।
विद्ये वेदान्तवेद्ये परिणतपठिते मोक्षदे मुक्तिमार्गे
मार्गातीतस्वरूपे भव मम वरदा शारदे शुभ्रहारे॥ ५॥

ऐं ऐं ऐं—इस बीजमन्त्रसे दृष्टिगत होनेवाली, पद्मयोनि ब्रह्माजीके मुखकमलसे उत्पन्न, अपने ही स्वरूपमें स्थित, मूर्त तथा अमूर्तरूपमें प्रकाशित होनेवाली, सम्पूर्ण गुणोंसे समन्वित, निर्गुण, निर्विकार, न तो स्थूल रूपवाली और न ही सूक्ष्म रूपवाली, अविदित ऐश्वर्यवाली, विज्ञानतत्त्वसे भी परे, विश्वरूपिणी, विश्वकी अन्तरात्मास्वरूपा, श्रेष्ठ देवताओंके द्वारा वन्दित, निष्कल तथा नित्यशुद्धस्वरूपिणी। (हे देवि! मैं आपकी स्तुति और वन्दना करता हूँ।) ॥ ४॥

ह्रीं ह्रीं ह्रीं—इस बीजमन्त्रके जपसे प्रसन्न होनेवाली, हिमकी कान्तिवाले मुकुटसे सुशोभित तथा वीणाके वादनमें व्यग्रहस्तवाली हे मातः! आपको नमस्कार है; मेरी मूर्खताको पूर्णरूपसे जला दीजिये और हे जननि! मुझे उत्तम बुद्धि प्रदान कीजिये। विद्यास्वरूपिणी, वेदान्तके द्वारा जाननेयोग्य, अधीत विद्याको दृढ़ता प्रदान करनेवाली, मोक्ष देनेवाली, मोक्षकी साधनभूता, मार्गातीतस्वरूपा तथा धवलहारसे सुशोभित हे शारदे! आप मेरे लिये वरदायिनी होवें॥ ५॥

धीं धीं धीं धारणाख्ये धृतिमतिनतिभिर्नामभिः कीर्तनीये
नित्येऽनित्ये निमित्ते मुनिगणनमिते नूतने वै पुराणे।
पुण्ये पुण्यप्रवाहे हरिहरनमिते नित्यशुद्धे सुवर्णे
मातर्मात्रार्धतत्त्वे मतिमतिमतिदे माधवप्रीतिमोदे॥ ६॥
ह्रूं ह्रूं ह्रूं स्वस्वरूपे दह दह दुरितं पुस्तकव्यग्रहस्ते
संतुष्टाकारचित्ते स्मितमुखि सुभगे जृम्भिणि स्तम्भविद्ये।
मोहे मुग्धप्रवाहे कुरु मम विमतिध्वान्तविध्वंसमीडे
गीर्गौर्वाग्भारति त्वं कविवररसनासिद्धिदे सिद्धिसाध्ये॥ ७॥

धीं धीं धीं—इस बीजमन्त्रकी धारणास्वरूपा; धृति, मति, नति आदि नामोंसे पुकारी जानेवाली, नित्यानित्यस्वरूपिणी, जगत्‌की निमित्तकारणभूता, नवीना एवं सनातनी, पुण्यमयी, पुण्यका विस्तार करनेवाली, विष्णु तथा शिवसे नमस्कृत, नित्यशुद्धस्वरूपिणी, सुन्दर वर्णवाली, अर्धमात्रातत्त्वस्वरूपा, विशेषरूपसे सूक्ष्म बुद्धि प्रदान करनेवाली, भगवान् विष्णुके प्रति अनन्य प्रेम रखनेवालोंको आनन्द प्रदान करनेवाली हे मातः! (मुझे बुद्धि प्रदान कीजिये।)॥ ६॥

ह्रूं ह्रूं ह्रूं—इस बीजमन्त्रकी आत्मस्वरूपिणी, [हे सरस्वति!] मेरे पापोंको पूर्णरूपसे भस्म कर दीजिये। पुस्तकसे सुशोभित हाथवाली, प्रसन्नविग्रहा तथा सन्तुष्टचित्ता, मुस्कानयुक्त मुखमण्डलवाली, सौभाग्यशालिनी, जृम्भास्वरूपिणी, स्तम्भनविद्यास्वरूपा, मोहस्वरूपिणी तथा सुधाप्रवाहवाली [हे देवि!] आप मेरे कुबुद्धिरूपी अन्धकारका नाश कर दीजिये। गीः, गौः, वाक् तथा भारती—इन नामोंसे सम्बोधित होनेवाली, श्रेष्ठ कवियोंकी वाणीको सिद्धि प्रदान करनेवाली तथा सिद्धियोंको सफल बना देनेवाली हे देवि! (मैं आपकी स्तुति करता हूँ)॥ ७॥

स्तौमि त्वां त्वां च वन्दे मम खलु रसनां नो कदाचित्त्यजेथा
मा मे बुद्धिर्विरुद्धा भवतु न च मनो देवि मे यातु पापम्।
मा मे दुःखं कदाचित् क्वचिदपि विषयेऽप्यस्तु मे नाकुलत्वं
शास्त्रे वादे कवित्वे प्रसरतु मम धीर्माऽस्तु कुण्ठा कदापि॥ ८॥
इत्येतैः श्लोकमुख्यैः प्रतिदिनमुषसि स्तौति यो भक्तिनम्रो
वाणीं वाचस्पतेरप्यविदितविभवो वाक्पटुर्मुक्तकण्ठः।
स स्यादिष्टार्थलाभैः सुतमिव सततं पाति तं सा च देवी
सौभाग्यं तस्य लोके प्रभवति कविता विघ्नमस्तं प्रयाति॥ ९॥
निर्विघ्नं तस्य विद्या प्रभवति सततं चाश्रुतग्रन्थबोधः
कीर्तिस्त्रैलोक्यमध्ये निवसति वदने शारदा तस्य साक्षात्।

हे देवि! मैं आपकी स्तुति तथा आपकी वन्दना करता हूँ, आप कभी भी मेरी वाणीका त्याग न करें, मेरी बुद्धि [धर्मके] विरुद्ध न हो, मेरा मन पापकर्मोंकी ओर प्रवृत्त न हो, मुझे कभी भी कहीं भी दुःख न हो, विषयोंमें मेरी थोड़ी भी आसक्ति न हो; शास्त्रमें, तत्त्वनिरूपणमें और कवित्वमें मेरी बुद्धि सदा विकसित होती रहे और उसमें कभी भी कुण्ठा न आने पाये॥ ८॥

जो मनुष्य भक्तिके साथ विनम्र होकर प्रतिदिन उषाकालमें इन उत्तम श्लोकोंसे सरस्वतीकी स्तुति करता है, वह बृहस्पतिके भी द्वारा अज्ञात वाग्वैभवसे सम्पन्न, वाक्पटु तथा मुक्तकण्ठ हो जाता है। वे भगवती सरस्वती अभीष्ट पदार्थोंकी प्राप्तिके द्वारा पुत्रकी भाँति निरन्तर उसकी रक्षा करती हैं, संसारमें उसके सौभाग्यका उदय हो जाता है और उसकी काव्य-रचनाकी बाधाएँ समाप्त हो जाती हैं। वाग्देवता शारदाकी महती कृपासे उस मनुष्यकी विद्या निर्बाधरूपसे निरन्तर बढ़ती रहती है, उसे अश्रुत ग्रन्थोंका भी अवबोध हो जाता

दीर्घायुर्लोकपूज्यः सकलगुणनिधिः संततं राजमान्यो
वाग्देव्याः सम्प्रसादात् त्रिजगति विजयी जायते सत्सभासु॥ १०॥
ब्रह्मचारी व्रती मौनी त्रयोदश्यां निरामिषः।
सारस्वतो जनः पाठात् सकृदिष्टार्थलाभवान्॥ ११॥
पक्षद्वये त्रयोदश्यामेकविंशतिसंख्यया।
अविच्छिन्नः पठेद्धीमान् ध्यात्वा देवीं सरस्वतीम्॥ १२॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सुभगो लोकविश्रुतः।
वाञ्छितं फलमाप्नोति लोकेऽस्मिन् नात्र संशयः॥ १३॥

है, तीनों लोकोंमें उसकी कीर्ति फैल जाती है और साक्षात् सरस्वती उसके मुखमें वास करती हैं। वह दीर्घायु, लोकपूज्य, समस्त गुणोंकी खान, राजाओंके लिये सम्माननीय और त्रिलोकीके अन्दर विद्वानोंकी सभाओंमें सदा विजयी होता है॥ १-१०॥

त्रयोदशीके दिन ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए निरामिष-भोजी होकर, नियमपूर्वक मौन रहकर सरस्वतीका भक्त इस स्तोत्रके एक बार पाठ कर लेनेमात्रसे अपने अभीष्ट अर्थको प्राप्त कर लेता है॥ ११॥

बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि [महीनेके] दोनों पक्षोंमें [पड़नेवाली] त्रयोदशी तिथिको सरस्वतीदेवीका ध्यान करके अनवरत इक्कीस बार [इस स्तोत्रका] पाठ करे। ऐसा व्यक्ति समस्त पापोंसे मुक्त, सौभाग्यशाली और लोकमें विख्यात हो जाता है, वह इस संसारमें वाञ्छित फल प्राप्त करता है, इसमें संदेह नहीं है॥ १२-१३॥

ब्रह्मणेति स्वयं प्रोक्तं सरस्वत्याः स्तवं शुभम्।
प्रयत्नेन पठेन्नित्यं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥ १४॥

॥ इति श्रीमद्ब्रह्मणा विरचितं श्रीसिद्धसरस्वतीस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

२७—नीलसरस्वतीस्तोत्रम्

घोररूपे महारावे सर्वशत्रुभयङ्करि।
भक्तेभ्यो वरदे देवि त्राहि मां शरणागतम्॥ १॥
ॐ सुरासुरार्चिते देवि सिद्धगन्धर्वसेविते।
जाड्यपापहरे देवि त्राहि मां शरणागतम्॥ २॥
जटाजूटसमायुक्ते लोलजिह्वान्तकारिणि।
द्रुतबुद्धिकरे देवि त्राहि मां शरणागतम्॥ ३॥

स्वयं ब्रह्माजीके द्वारा कहे गये इस कल्याणकारी सरस्वतीस्तोत्रका पाठ प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये, ऐसा करनेसे वह मनुष्य अमृतत्व प्राप्त कर लेता है॥ १४॥

॥ श्रीमद्ब्रह्माजीद्वारा विरचित श्रीसिद्धसरस्वतीस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

भयानक रूपवाली, घोर निनाद करनेवाली, सभी शत्रुओंको भयभीत करनेवाली तथा भक्तोंको वर प्रदान करनेवाली हे देवि! आप मुझ शरणागतकी रक्षा करें॥ १॥

देव तथा दानवोंके द्वारा पूजित, सिद्धों तथा गन्धर्वोंके द्वारा सेवित और जड़ता तथा पापको हरनेवाली हे देवि! आप मुझ शरणागतकी रक्षा करें॥ २॥

जटाजूटसे सुशोभित, चंचल जिह्वाको अंदरकी ओर करनेवाली, बुद्धिको तीक्ष्ण बनानेवाली हे देवि! आप मुझ शरणागतकी रक्षा करें॥ ३॥

सौम्यक्रोधधरे रूपे चण्डरूपे नमोऽस्तु ते।
सृष्टिरूपे नमस्तुभ्यं त्राहि मां शरणागतम्॥ ४॥
जडानां जडतां हन्ति भक्तानां भक्तवत्सला।
मूढतां हर मे देवि त्राहि मां शरणागतम्॥ ५॥
वं हूं हूं कामये देवि बलिहोमप्रिये नमः।
उग्रतारे नमो नित्यं त्राहि मां शरणागतम्॥ ६॥
बुद्धिं देहि यशो देहि कवित्वं देहि देहि मे।
मूढत्वं च हरेद्देवि त्राहि मां शरणागतम्॥ ७॥
इन्द्रादिविलसद्द्वन्द्ववन्दिते करुणामयि।
तारे ताराधिनाथास्ये त्राहि मां शरणागतम्॥ ८॥

सौम्य क्रोध धारण करनेवाली, उत्तम विग्रहवाली, प्रचण्ड स्वरूपवाली हे देवि! आपको नमस्कार है। हे सृष्टिस्वरूपिणि! आपको नमस्कार है; मुझ शरणागतकी रक्षा करें॥ ४॥

आप मूर्खोंकी मूर्खताका नाश करती हैं और भक्तोंके लिये भक्तवत्सला हैं। हे देवि! आप मेरी मूढ़ताको हरें और मुझ शरणागतकी रक्षा करें॥ ५॥

वं हूं हूं बीजमन्त्रस्वरूपिणी हे देवि! मैं आपके दर्शनकी कामना करता हूँ। बलि तथा होमसे प्रसन्न होनेवाली हे देवि! आपको नमस्कार है। उग्र आपदाओंसे तारनेवाली हे उग्रतारे! आपको नित्य नमस्कार है; आप मुझ शरणागतकी रक्षा करें॥ ६॥

हे देवि! आप मुझे बुद्धि दें, कीर्ति दें, कवित्वशक्ति दें और मेरी मूढ़ताका नाश करें। आप मुझ शरणागतकी रक्षा करें॥ ७॥

इन्द्र आदिके द्वारा वन्दित शोभायुक्तचरणयुगलवाली, करुणासे परिपूर्ण, चन्द्रमाके समान मुखमण्डलवाली और जगत्‌को तारनेवाली हे भगवती तारा! आप मुझ शरणागतकी रक्षा करें॥ ८॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां यः पठेन्नरः।
षण्मासैः सिद्धिमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ ९ ॥
मोक्षार्थी लभते मोक्षं धनार्थी लभते धनम्।
विद्यार्थी लभते विद्यां तर्कव्याकरणादिकम्॥ १० ॥
इदं स्तोत्रं पठेद्यस्तु सततं श्रद्धयाऽन्वितः।
तस्य शत्रुः क्षयं याति महाप्रज्ञा प्रजायते॥ ११ ॥
पीडायां वापि संग्रामे जाड्ये दाने तथा भये।
य इदं पठति स्तोत्रं शुभं तस्य न संशयः॥ १२ ॥
इति प्रणम्य स्तुत्वा च योनिमुद्रां प्रदर्शयेत्॥ १३ ॥

॥ इति नीलसरस्वतीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

जो मनुष्य अष्टमी, नवमी तथा चतुर्दशी तिथिको इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह छः महीनेमें सिद्धि प्राप्त कर लेता है; इसमें संदेह नहीं करना चाहिये॥ ९॥

इसका पाठ करनेसे मोक्षकी कामना करनेवाला मोक्ष प्राप्त कर लेता है; धन चाहनेवाला धन पा जाता है और विद्या चाहनेवाला विद्या तथा तर्क-व्याकरण आदिका ज्ञान प्राप्त कर लेता है॥ १०॥

जो मनुष्य भक्तिपरायण होकर सतत इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके शत्रुका नाश हो जाता है और उसमें महान बुद्धिका उदय हो जाता है॥ ११॥

जो व्यक्ति विपत्तिमें, संग्राममें, मूर्खत्वकी दशामें, दानके समय तथा भयकी स्थितिमें इस स्तोत्रको पढ़ता है, उसका कल्याण हो जाता है; इसमें संदेह नहीं है। इस प्रकार स्तुति करनेके अनन्तर देवीको प्रणाम करके उन्हें योनिमुद्रा दिखानी चाहिये॥ १२-१३॥

॥ इस प्रकार नीलसरस्वतीस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

लक्ष्मीस्तोत्राणि

२८—श्रीकनकधारास्तोत्रम्

अङ्गं हरेः पुलकभूषणमाश्रयन्ती
भृङ्गाङ्गनेव मुकुलाभरणं तमालम्।
अङ्गीकृताखिलविभूतिरपाङ्गलीला
माङ्गल्यदास्तु मम मङ्गलदेवतायाः॥ १॥

मुग्धा मुहुर्विदधती वदने मुरारेः
प्रेमत्रपाप्रणिहितानि गतागतानि।
माला दृशोर्मधुकरीव महोत्पले या
सा मे श्रियं दिशतु सागरसम्भवायाः॥ २॥

जैसे भ्रमरी अधखिले कुसुमोंसे अलंकृत तमालतरुका आश्रय लेती है, उसी प्रकार जो श्रीहरिके रोमाञ्चसे सुशोभित श्रीअंगोंपर निरन्तर पड़ती रहती है तथा जिसमें सम्पूर्ण ऐश्वर्यका निवास है, वह सम्पूर्ण मंगलोंकी अधिष्ठात्री देवी भगवती महालक्ष्मीकी कटाक्षलीला मेरे लिये मंगलदायिनी हो॥ १॥

जैसे भ्रमरी महान् कमलदलपर आती-जाती या मँडराती रहती है, उसी प्रकार जो मुरशत्रु श्रीहरिके मुखारविन्दकी ओर बारंबार प्रेमपूर्वक जाती और लज्जाके कारण लौट आती है, वह समुद्रकन्या लक्ष्मीकी मनोहर मुग्ध दृष्टिमाला मुझे धन-सम्पत्ति प्रदान करे॥ २॥

विश्वामरेन्द्रपदविभ्रमदानदक्ष-

मानन्दहेतुरधिकं मुरविद्विषोऽपि।

ईषन्निषीदतु मयि क्षणमीक्षणार्ध-

मिन्दीवरोदरसहोदरमिन्दिरायाः ॥ ३ ॥

आमीलिताक्षमधिगम्य मुदा मुकुन्द-

मानन्दकन्दमनिमेषमनङ्गतन्त्रम् ।

आकेकरस्थितकनीनिकपक्ष्मनेत्रं

भूत्यै भवेन्मम भुजङ्गशयाङ्गनायाः ॥ ४ ॥

बाह्वन्तरे मधुजितः श्रितकौस्तुभे या

हारावलीव हरिनीलमयी विभाति।

जो सम्पूर्ण देवताओंके अधिपति इन्द्रके पदका वैभव-विलास देनेमें समर्थ है, मुरारि श्रीहरिको भी अधिकाधिक आनन्द प्रदान करनेवाली है तथा जो नीलकमलके भीतरी भागके समान मनोहर जान पड़ती है, वह लक्ष्मीजीके अधखुले नयनोंकी दृष्टि क्षणभरके लिये मुझपर भी थोड़ी-सी अवश्य पड़े ॥ ३ ॥

शेषशायी भगवान् विष्णुकी धर्मपत्नी श्रीलक्ष्मीजीका वह नेत्र हमें ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला हो, जिसकी पुतली तथा बरौनियाँ अनंगके वशीभूत (प्रेमपरवश) हो अधखुले, किंतु साथ ही निर्निमेष नयनोंसे देखनेवाले आनन्दकन्द श्रीमुकुन्दको अपने निकट पाकर कुछ तिरछी हो जाती हैं ॥ ४ ॥

जो भगवान् मधुसूदनके कौस्तुभमणिमण्डित वक्षःस्थलमें इन्द्रनीलमयी

कामप्रदा भगवतोऽपि कटाक्षमाला
कल्याणमावहतु मे कमलालयायाः ॥ ५ ॥
कालाम्बुदालिललितोरसि कैटभारे-
र्धाराधरे स्फुरति या तडिदङ्गनेव।
मातुः समस्तजगतां महनीयमूर्ति-
र्भद्राणि मे दिशतु भार्गवनन्दनायाः ॥ ६ ॥
प्राप्तं पदं प्रथमतः किल यत्प्रभावान्
माङ्गल्यभाजि मधुमाथिनि मन्मथेन।
मय्यापतेत्तदिह मन्थरमीक्षणार्धं
मन्दालसं च मकरालयकन्यकायाः ॥ ७ ॥
दद्याद् दयानुपवनो द्रविणाम्बुधारा-
मस्मिन्नकिञ्चनविहङ्गशिशौ विषण्णे।

हारावली-सी सुशोभित होती है तथा उनके भी मनमें काम (प्रेम)-का संचार करनेवाली है, वह कमलकुंजवासिनी कमलाकी कटाक्षमाला मेरा कल्याण करे॥ ५॥

जैसे मेघोंकी घटामें बिजली चमकती है, उसी प्रकार जो कैटभशत्रु श्रीविष्णुके काली मेघमालाके समान श्यामसुन्दर वक्षःस्थलपर प्रकाशित होती हैं, जिन्होंने अपने आविर्भावसे भृगुवंशको आनन्दित किया है तथा जो समस्त लोकोंकी जननी हैं, उन भगवती लक्ष्मीकी पूजनीया मूर्ति मुझे कल्याण प्रदान करे॥ ६॥

समुद्रकन्या कमलाकी वह मन्द, अलस, मन्थर और अर्धोन्मीलित दृष्टि, जिसके प्रभावसे कामदेवने मंगलमय भगवान् मधुसूदनके हृदयमें प्रथम बार स्थान प्राप्त किया था, यहाँ मुझपर पड़े॥ ७॥

भगवान् नारायणकी प्रेयसी लक्ष्मीका नेत्ररूपी मेघ दयारूपी

दुष्कर्मघर्ममपनीय चिराय दूरं
नारायणप्रणयिनीनयनाम्बुवाहः ॥ ८ ॥

इष्टा विशिष्टमतयोऽपि यया दयार्द्र-
दृष्ट्या त्रिविष्टपपदं सुलभं लभन्ते।
दृष्टिः प्रहृष्टकमलोदरदीप्तिरिष्टां
पुष्टिं कृषीष्ट मम पुष्करविष्टरायाः ॥ ९ ॥

गीर्देवतेति गरुडध्वजसुन्दरीति
शाकम्भरीति शशिशेखरवल्लभेति।
सृष्टिस्थितिप्रलयकेलिषु संस्थितायै
तस्यै नमस्त्रिभुवनैकगुरोस्तरुण्यै ॥ १० ॥

अनुकूल पवनसे प्रेरित हो दुष्कर्मरूपी घामको चिरकालके लिये दूर हटाकर विषादमें पड़े हुए मुझ दीनरूपी चातकपोतपर धनरूपी जलधाराकी वृष्टि करे ॥ ८ ॥

विशिष्ट बुद्धिवाले मनुष्य जिनके प्रीतिपात्र होकर उनकी दयादृष्टिके प्रभावसे स्वर्गपदको सहज ही प्राप्त कर लेते हैं, उन्हीं पद्मासना पद्माकी वह विकसित कमल-गर्भके समान कान्तिमती दृष्टि मुझे मनोवाञ्छित पुष्टि प्रदान करे ॥ ९ ॥

जो सृष्टि-लीलाके समय वाग्देवता (ब्रह्मशक्ति)—के रूपमें स्थित होती हैं, पालन-लीला करते समय भगवान् गरुडध्वजकी सुन्दरी पत्नी लक्ष्मी (या वैष्णवी शक्ति)—के रूपमें विराजमान होती हैं तथा प्रलय-लीलाके कालमें शाकम्भरी (भगवती दुर्गा) अथवा चन्द्रशेखरवल्लभा पार्वती (रुद्रशक्ति)—के रूपमें अवस्थित होती हैं, उन त्रिभुवनके एकमात्र गुरु भगवान् नारायणकी नित्ययौवना प्रेयसी श्रीलक्ष्मीजीको नमस्कार है ॥ १० ॥

श्रुत्यै नमोऽस्तु शुभकर्मफलप्रसूत्यै
रत्यै नमोऽस्तु रमणीयगुणार्णवायै।
शक्त्यै नमोऽस्तु शतपत्रनिकेतनायै
पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुषोत्तमवल्लभायै॥ ११॥

नमोऽस्तु नालीकनिभाननायै
नमोऽस्तु दुग्धोदधिजन्मभूत्यै।
नमोऽस्तु सोमामृतसोदरायै
नमोऽस्तु नारायणवल्लभायै॥ १२॥

सम्पत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि
साम्राज्यदानविभवानि सरोरुहाक्षि।
त्वद्वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि
मामेव मातरनिशं कलयन्तु मान्ये॥ १३॥

माता! शुभ कर्मोंका फल देनेवाली श्रुतिके रूपमें आपको प्रणाम है। रमणीय गुणोंकी सिन्धुरूपा रतिके रूपमें आपको नमस्कार है। कमलवनमें निवास करनेवाली शक्तिस्वरूपा लक्ष्मीको नमस्कार है तथा पुरुषोत्तमप्रिया पुष्टिको नमस्कार है॥ ११॥

कमलवदना कमलाको नमस्कार है। क्षीरसिन्धुसम्भूता श्रीदेवीको नमस्कार है। चन्द्रमा और सुधाकी सगी बहिनको नमस्कार है। भगवान् नारायणकी वल्लभाको नमस्कार है॥ १२॥

कमलसदृश नेत्रोंवाली माननीया माँ! आपके चरणोंमें की हुई वन्दना सम्पत्ति प्रदान करनेवाली, सम्पूर्ण इन्द्रियोंको आनन्द देनेवाली, साम्राज्य देनेमें समर्थ और सारे पापोंको हर लेनेके लिये सर्वथा उद्यत है। वह सदा मुझे ही अवलम्बन करे (मुझे ही आपकी चरणवन्दनाका शुभ अवसर सदा प्राप्त होता रहे)॥ १३॥

यत्कटाक्षसमुपासनाविधिः
सेवकस्य सकलार्थसम्पदः ।
संतनोति वचनाङ्गमानसै-
स्त्वां मुरारिहृदयेश्वरीं भजे ॥ १४ ॥
सरसिजनिलये सरोजहस्ते
धवलतमांशुकगन्धमाल्यशोभे ।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे
त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम् ॥ १५ ॥
दिग्घस्तिभिः कनककुम्भमुखावसृष्ट-
स्वर्वाहिनीविमलचारुजलप्लुताङ्गीम् ।

जिनके कृपाकटाक्षके लिये की हुई उपासना उपासकके लिये सम्पूर्ण मनोरथों और सम्पत्तियोंका विस्तार करती है, श्रीहरिकी हृदयेश्वरी उन्हीं आप लक्ष्मीदेवीका मैं मन, वाणी और शरीरसे भजन करता हूँ ॥ १४ ॥

भगवति हरिप्रिये! तुम कमलवनमें निवास करनेवाली हो, तुम्हारे हाथोंमें लीलाकमल सुशोभित है। तुम अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्र, गन्ध और माला आदिसे शोभा पा रही हो। तुम्हारी झाँकी बड़ी मनोरम है। त्रिभुवनका ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली देवि! मुझपर प्रसन्न हो जाओ ॥ १५ ॥

दिग्गजोंद्वारा सुवर्णकलशके मुखसे गिराये गये आकाशगंगाके निर्मल एवं मनोहर जलसे जिनके श्रीअंगोंका अभिषेक (स्नानकार्य)

प्रातर्नमामि जगतां जननीमशेष-
लोकाधिनाथगृहिणीममृताब्धिपुत्रीम् ॥ १६ ॥
कमले कमलाक्षवल्लभे
त्वं करुणापूरतरङ्गितैरपाङ्गैः।
अवलोकय मामकिञ्चनानां
प्रथमं पात्रमकृत्रिमं दयायाः॥ १७ ॥
स्तुवन्ति ये स्तुतिभिरमूभिरन्वहं
त्रयीमयीं त्रिभुवनमातरं रमाम्।
गुणाधिका गुरुतरभाग्यभागिनो
भवन्ति ते भुवि बुधभाविताशयाः॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं कनकधारास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

सम्पादित होता है, सम्पूर्ण लोकोंके अधीश्वर भगवान् विष्णुकी गृहिणी और क्षीरसागरकी पुत्री उन जगज्जननी लक्ष्मीको मैं प्रातःकाल प्रणाम करता हूँ॥ १६ ॥

कमलनयन केशवकी कमनीय कामिनी कमले! मैं अकिञ्चन (दीनहीन) मनुष्योंमें अग्रगण्य हूँ, अतएव तुम्हारी कृपाका स्वाभाविक पात्र हूँ। तुम उमड़ती हुई करुणाकी बाढ़की तरल तरंगोंके समान कटाक्षोंद्वारा मेरी ओर देखो॥ १७ ॥

जो लोग इन स्तुतियोंद्वारा प्रतिदिन वेदत्रयीस्वरूपा त्रिभुवनजननी भगवती लक्ष्मीकी स्तुति करते हैं, वे इस भूतलपर महान् गुणवान् और अत्यन्त सौभाग्यशाली होते हैं तथा विद्वान् पुरुष भी उनके मनोभावको जाननेके लिये उत्सुक रहते हैं॥ १८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित कनकधारास्तोत्र सम्पूर्ण हुआ ॥

२९—कल्याणवृष्टिस्तोत्रम्*

कल्याणवृष्टिभिरिवामृतपूरिताभि-
लक्ष्मीस्वयंवरणमङ्गलदीपिकाभिः ।
सेवाभिरम्ब तव पादसरोजमूले
नाकारि किं मनसि भक्तिमतां जनानाम् ॥ १ ॥
एतावदेव जननि स्पृहणीयमास्ते
त्वद्वन्दनेषु सलिलस्थगिते च नेत्रे ।
सांनिध्यमुद्यदरुणायतसोदरस्य
त्वद्विग्रहस्य सुधया परयाप्लुतस्य ॥ २ ॥

अम्ब! अमृतसे परिपूर्ण कल्याणकी वर्षा करनेवाली एवं लक्ष्मीको स्वयं वरण करनेवाली मंगलमयी दीपमालाकी भाँति आपकी सेवाओंने आपके चरणकमलोंमें भक्तिभाव रखनेवाले मनुष्योंके मनमें क्या नहीं कर दिया? अर्थात् उनके समस्त मनोरथोंको पूर्ण कर दिया ॥ १ ॥

जननि! मेरी तो बस यही स्पृहा है कि परमोत्कृष्ट सुधासे परिप्लुत तथा उदीयमान अरुणवर्ण सूर्यकी समता करनेवाले आपके अरुण श्रीविग्रहके संनिकट पहुँचकर आपकी वन्दनाओंके समय मेरे नेत्र अश्रुजलसे परिपूर्ण हो जायँ ॥ २ ॥

---

* कल्याणवृष्टिस्तोत्र [illegible] भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यद्वारा विरचित है। [illegible] इसमें [illegible] श्लोक हैं। पाठक इसका प्रतिदिन पाठ करें तो उनका परम कल्याण [illegible] है। साधकोंके लिये इसका अर्थ भी दिया जा रहा है।

ईशित्वभावकलुषाः कति नाम सन्ति
ब्रह्मादयः प्रतियुगं प्रलयाभिभूताः।
एकः स एव जननि स्थिरसिद्धिरास्ते
यः पादयोस्तव सकृत् प्रणतिं करोति॥ ३॥
लब्ध्वा सकृत् त्रिपुरसुन्दरि तावकीनं
कारुण्यकन्दलितकान्तिभरं कटाक्षम्।
कन्दर्पभावसुभगास्त्वयि भक्तिभाजः
सम्मोहयन्ति तरुणीर्भुवनत्रयेषु॥ ४॥
ह्रींकारमेव तव नाम गृणन्ति वेदा
मातस्त्रिकोणनिलये त्रिपुरे त्रिनेत्रे।
यत्संस्मृतौ यमभटादिभयं विहाय
दीव्यन्ति नन्दनवने सह लोकपालैः॥ ५॥

माँ! प्रभुत्वभावसे कलुषित ब्रह्मा आदि कितने देवता हो चुके हैं, जो प्रत्येक युगमें प्रलयसे अभिभूत (विनष्ट) हो गये हैं, किंतु एक वही व्यक्ति स्थिरसिद्धियुक्त विद्यमान रहता है, जो एक बार आपके चरणोंमें प्रणाम कर लेता है॥ ३॥

त्रिपुरसुन्दरि! आपमें भक्तिभाव रखनेवाले भक्तजन एक बार भी आपके करुणासे अंकुरित सुशोभित कटाक्षको पाकर कामदेवसदृश सौन्दर्यशाली हो जाते हैं और त्रिभुवनमें युवतियोंको सम्मोहित कर लेते हैं॥ ४॥

त्रिकोणमें निवास करनेवाली एवं तीन नेत्रोंसे सुशोभित माता त्रिपुरसुन्दरि! वेद 'ह्रीं'कारको ही आपका नाम बतलाते हैं। वह नाम जिनके संस्मरणमें आ गया, वे भक्तजन यमदूतोंके भयको त्यागकर लोकपालोंके साथ नन्दनवनमें क्रीडा करते हैं॥ ५॥

हन्तुः पुरामधिगलं परिपूर्यमाणः
क्रूरः कथं नु भविता गरलस्य वेगः।
आश्वासनाय किल मातरिदं तवार्धं
देहस्य शश्वदमृताप्लुतशीतलस्य॥ ६॥
सर्वज्ञतां सदसि वाक्पटुतां प्रसूते
देवि त्वदङ्घ्रिसरसीरुहयोः प्रणामः।
किं च स्फुरन्मुकुटमुज्ज्वलमातपत्रं
द्वे चामरे च वसुधां महतीं ददाति॥ ७॥
कल्पद्रुमैरभिमतप्रतिपादनेषु
कारुण्यवारिधिभिरम्ब भवत्कटाक्षैः।
आलोकय त्रिपुरसुन्दरि मामनाथं
त्वय्येव भक्तिभरितं त्वयि दत्तदृष्टिम्॥ ८॥

माता! निरन्तर अमृतसे परिप्लुत होनेके कारण शीतल बने हुए आपके शरीरका यह अर्धभाग जिनके साथ संलग्न था, उन त्रिपुरहन्ता शंकरजीके गलेमें भरा हुआ हलाहल विषका वेग उनके लिये अनिष्टकारक कैसे होता?॥ ६॥

देवि! आपके चरणकमलोंमें किया हुआ प्रणाम सर्वज्ञता और सभामें वाक्-चातुर्य तो उत्पन्न करता ही है, साथ ही उद्भासित मुकुट, श्वेत छत्र, दो चामर और विशाल पृथ्वीका साम्राज्य भी प्रदान करता है॥ ७॥

माँ त्रिपुरसुन्दरि! मैं आपकी ही भक्तिसे परिपूर्ण हूँ और आपकी ओर ही दृष्टि लगाये हुए हूँ, अतः आप मुझ अनाथकी ओर मनोरथोंको पूर्ण करनेमें कल्पवृक्षसदृश एवं करुणासागरस्वरूप अपने कटाक्षोंसे देख तो लें॥ ८॥

हन्तेतरेष्वपि मनांसि निधाय चान्ये
भक्तिं वहन्ति किल पामरदैवतेषु।
त्वामेव देवि मनसा वचसा स्मरामि
त्वामेव नौमि शरणं जगति त्वमेव॥ ९ ॥
लक्ष्येषु सत्स्वपि तवाक्षिविलोकनाना-
मालोकय त्रिपुरसुन्दरि मां कथंचित्।
नूनं मयापि सदृशं करुणैकपात्रं
जातो जनिष्यति जनो न च जायते च॥ १० ॥
ह्रीं ह्रीमिति प्रतिदिनं जपतां जनानां
किं नाम दुर्लभमिह त्रिपुराधिवासे।
मालाकिरीटमदवारणमाननीया-
स्तान् सेवते मधुमती स्वयमेव लक्ष्मीः॥ ११ ॥

देवि! खेद है कि अन्यान्य जन आपके अतिरिक्त अन्य साधारण देवताओंमें भी मन लगाकर उनकी भक्ति करते हैं, किंतु मैं मन और वचनसे आपका ही स्मरण करता हूँ, आपको ही प्रणाम करता हूँ; क्योंकि जगत्में आप ही शरणदात्री हैं॥ ९॥

त्रिपुरसुन्दरि! यद्यपि आपके नेत्रोंके लिये देखनेके बहुत-से लक्ष्य वर्तमान हैं, तथापि किसी प्रकार आप मेरी ओर दृष्टि डाल दें; क्योंकि निश्चय ही मेरे समान करुणाका पात्र न कोई पैदा हुआ है, न हो रहा है और न पैदा होगा॥ १०॥

त्रिपुरमें निवास करनेवाली माँ! 'ह्रीं, ह्रीं'—इस प्रकार (आपके बीजमन्त्रका) प्रतिदिन जप करनेवाले मनुष्योंके लिये इस जगत्में क्या दुर्लभ है? माला, किरीट और उन्मत्त गजराजसे युक्त उन माननीयोंकी तो स्वयं मधुमती लक्ष्मी ही सेवा करती हैं॥ ११॥

सम्पत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि
साम्राज्यदानकुशलानि सरोरुहाक्षि।
त्वद्वन्दनानि दुरितौघहरोद्यतानि
मामेव मातरनिशं कलयन्तु नान्यम्॥ १२॥
कल्पोपसंहरणकल्पिततांडवस्य
देवस्य खण्डपरशोः परमेश्वरस्य।
पाशाङ्कुशैक्षवशरासनपुष्पबाणा
सा साक्षिणी विजयते तव मूर्तिरेका॥ १३॥
लग्नं सदा भवतु मातरिदं तवार्धं
तेजः परं बहुलकुङ्कुमपङ्कशोणम्।
भास्वत्किरीटममृतांशुकलावतंसं
मध्ये त्रिकोणमुदितं परमामृतार्द्रम्॥ १४॥

कमलनयनि! आपकी वन्दनाएँ सम्पत्ति प्रदान करनेवाली, समस्त इन्द्रियोंको आनन्दित करनेवाली, साम्राज्य प्रदान करनेमें कुशल और पापसमूहको नष्ट करनेमें उद्यत रहनेवाली हैं, मातः! वे निरन्तर मुझे ही प्राप्त हों, दूसरेको नहीं॥ १२॥

कल्पके उपसंहारके समय ताण्डव नृत्य करनेवाले खण्डपरशु देवाधिदेव परमेश्वर शंकरके लिये पाश, अंकुश, ईखका धनुष और पुष्पबाणको धारण करनेवाली आपकी वह एकमात्र मूर्ति साक्षीरूपसे सुशोभित होती है॥ १३॥

मातः! आपका वह अर्धांग जो परम तेजोमय, अत्यधिक कुंकुमपंकसे युक्त होनेके कारण अरुण, चमकदार किरीटसे सुशोभित, चन्द्रकलासे विभूषित, अमृतसे परमार्द्र और त्रिकोणके मध्यमें प्रकट है, सदा शिवजीसे संलग्न रहे॥ १४॥

ह्रींकारमेव तव धाम तदेव रूपं
त्वन्नाम सुन्दरि सरोजनिवासमूले।
त्वत्तेजसा परिणतं वियदादिभूतं
सौख्यं तनोति सरसीरुहसम्भवादेः ॥ १५ ॥

ह्रींकारत्रयसम्पुटेन महता मन्त्रेण संदीपितं
स्तोत्रं यः प्रतिवासरं तव पुरो मातर्जपेन्मन्त्रवित्।
तस्य क्षोणिभुजो भवन्ति वशगा लक्ष्मीश्चिरस्थायिनी
वाणी निर्मलसूक्तिभारभरिता जागर्ति दीर्घं वयः ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं कल्याणवृष्टिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

कमलपर निवास करनेवाली सुन्दरि! 'ह्रीं'कार ही आपका धाम है, वही आपका रूप है, वही आपका नाम है और वही आपके तेजसे उत्पन्न हुए आकाशादिसे क्रमशः परिणत—जगत्‌का आदिकारण है, जो ब्रह्मा, विष्णु आदिको रचित-पालित वस्तु बनकर परम सुख देता है ॥ १५ ॥

मातः! जो मन्त्रज्ञ तीन 'ह्रीं' कारसे सम्पुटित महान् मन्त्रसे संदीपित इस स्तोत्रका प्रतिदिन आपके समक्ष जप करता है, राजालोग उसके वशीभूत हो जाते हैं, उसकी लक्ष्मी चिरस्थायिनी हो जाती है, उसकी वाणी निर्मल सूक्तियोंसे परिपूर्ण हो जाती है और वह दीर्घायु हो जाता है ॥ १६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित कल्याणवृष्टिस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ ॥

३०—श्रीलक्ष्मीस्तोत्रम्

सिंहासनगतः शक्रस्सम्प्राप्य त्रिदिवं पुनः।
देवराज्ये स्थितो देवीं तुष्टावाब्जकरां ततः॥ १॥

इन्द्र उवाच

नमस्ये सर्वलोकानां जननीमब्जसम्भवाम्।
श्रियमुन्निद्रपद्माक्षीं विष्णुवक्षःस्थलस्थिताम्॥ २॥
पद्मालयां पद्मकरां पद्मपत्रनिभेक्षणाम्।
वन्दे पद्ममुखीं देवीं पद्मनाभप्रियामहम्॥ ३॥
त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोकपावनी।
सन्ध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती॥ ४॥

इन्द्रने स्वर्गलोकमें जाकर फिरसे देवराज्यपर अधिकार पाया और राजसिंहासनपर आरूढ़ हो पद्महस्ता श्रीलक्ष्मीजीकी इस प्रकार स्तुति की—॥ १॥

इन्द्र बोले—सम्पूर्ण लोकोंकी जननी, विकसित कमलके सदृश नेत्रोंवाली, भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें विराजमान कमलोद्भवा श्रीलक्ष्मीदेवीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २॥

कमल ही जिनका निवासस्थान है, कमल ही जिनके करकमलोंमें सुशोभित है तथा कमलदलके समान ही जिनके नेत्र हैं, उन कमलमुखी कमलनाभप्रिया श्रीकमलादेवीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ३॥

हे देवि! तुम सिद्धि हो, स्वधा हो, स्वाहा हो, सुधा हो और त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली हो तथा तुम ही सन्ध्या, रात्रि, प्रभा, विभूति, मेधा, श्रद्धा और सरस्वती हो॥ ४॥

यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने।
आत्मविद्या च देवि त्वं विमुक्तिफलदायिनी॥ ५॥
आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च।
सौम्यासौम्यैर्जगद्रूपैस्त्वयैतद्देवि पूरितम्॥ ६॥
का त्वन्या त्वामृते देवि सर्वयज्ञमयं वपुः।
अध्यास्ते देवदेवस्य योगिचिन्त्यं गदाभृतः॥ ७॥
त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयम्।
विनष्टप्रायमभवत्त्वयेदानीं समेधितम्॥ ८॥
दाराः पुत्रास्तथागारस्सुहृद्धान्यधनादिकम्।
भवत्येतन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणान्नृणाम्॥ ९॥

हे शोभने! यज्ञविद्या (कर्मकाण्ड), महाविद्या (उपासना) और गुह्यविद्या (इन्द्रजाल) तुम्हीं हो तथा हे देवि! तुम्हीं मुक्ति-फल-दायिनी आत्मविद्या हो॥ ५॥

हे देवि! आन्वीक्षिकी (तर्कविद्या), वेदत्रयी, वार्ता (शिल्प-वाणिज्यादि) और दण्डनीति (राजनीति) भी तुम्हीं हो। तुम्हींने अपने शान्त और उग्ररूपोंसे इस समस्त संसारको व्याप्त कर रखा है॥ ६॥

हे देवि! तुम्हारे बिना और ऐसी कौन स्त्री है जो देवदेव भगवान् गदाधरके योगिजनचिन्तित सर्वयज्ञमय शरीरका आश्रय पा सके॥ ७॥

हे देवि! तुम्हारे छोड़ देनेपर सम्पूर्ण त्रिलोकी नष्टप्राय हो गयी थी, अब तुम्हींने उसे पुनः जीवनदान दिया है॥ ८॥

हे महाभागे! स्त्री, पुत्र, गृह, धन, धान्य तथा सुहृद्—ये सब सदा आपहीके दृष्टिपातसे मनुष्योंको मिलते हैं॥ ९॥

शरीरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सुखम्।
देवि त्वद्दृष्टिदृष्टानां पुरुषाणां न दुर्लभम्॥ १०॥
त्वं माता सर्वलोकानां देवदेवो हरिः पिता।
त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम्॥ ११॥
मा नः कोशं तथा गोष्ठं मा गृहं मा परिच्छदम्।
मा शरीरं कलत्रं च त्यजेथाः सर्वपावनि॥ १२॥
मा पुत्रान्मा सुहृद्वर्गं मा पशून्मा विभूषणम्।
त्यजेथा मम देवस्य विष्णोर्वक्षःस्थलालये॥ १३॥
सत्त्वेन सत्यशौचाभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः।
त्यज्यन्ते ते नराः सद्यः सन्त्यक्ता ये त्वयामले॥ १४॥

हे देवि! तुम्हारी कृपादृष्टिके पात्र पुरुषोंके लिये शारीरिक आरोग्य, ऐश्वर्य, शत्रुपक्षका नाश और सुख आदि कुछ भी दुर्लभ नहीं हैं॥ १०॥

तुम सम्पूर्ण लोकोंकी माता हो और देवदेव भगवान् हरि पिता हैं। हे मातः! तुमसे और श्रीविष्णुभगवान्‌से यह सकल चराचर जगत् व्याप्त है॥ ११॥

हे सर्वपावनि मातेश्वरि! हमारे कोश (खजाना), गोष्ठ (पशुशाला), गृह, भोग-सामग्री, शरीर और स्त्री आदिको आप कभी न त्यागें अर्थात् इनमें भरपूर रहें॥ १२॥

अयि विष्णुवक्षःस्थलनिवासिनि! हमारे पुत्र, सुहृद्, पशु और भूषण आदिको आप कभी न छोड़ें॥ १३॥

हे अमले! जिन मनुष्योंको तुम छोड़ देती हो उन्हें सत्त्व (मानसिक बल), सत्य, शौच और शील आदि गुण भी शीघ्र ही त्याग देते हैं॥ १४॥

त्वया विलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः।
कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि॥ १५॥
स श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान्।
स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः॥ १६॥
सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः।
पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लभे॥ १७॥
न ते वर्णयितुं शक्ता गुणाञ्जिह्वापि वेधसः।
प्रसीद देवि पद्माक्षि मास्मांस्त्याक्षीः कदाचन॥ १८॥

श्रीपराशर उवाच

एवं श्रीः संस्तुता सम्यक् प्राह देवी शतक्रतुम्।
शृण्वतां सर्वदेवानां सर्वभूतस्थिता द्विज॥ १९॥

तुम्हारी कृपादृष्टि होनेपर तो गुणहीन पुरुष भी शीघ्र ही शील आदि सम्पूर्ण गुण और कुलीनता तथा ऐश्वर्य आदिसे सम्पन्न हो जाते हैं॥ १५॥ हे देवि! जिसपर तुम्हारी कृपादृष्टि है वही प्रशंसनीय है, वही गुणी है, वही धन्यभाग्य है, वही कुलीन और बुद्धिमान् है तथा वही शूरवीर और पराक्रमी है॥ १६॥

हे विष्णुप्रिये! हे जगज्जननि! तुम जिससे विमुख हो, उसके तो शील आदि सभी गुण तुरंत अवगुणरूप हो जाते हैं॥ १७॥

हे देवि! तुम्हारे गुणोंका वर्णन करनेमें तो श्रीब्रह्माजीकी रसना भी समर्थ नहीं है। [फिर मैं क्या कर सकता हूँ?] अतः हे कमलनयने! अब मुझपर प्रसन्न होओ और मुझे कभी न छोड़ो॥ १८॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज! इस प्रकार सम्यक् स्तुति किये जानेपर सर्वभूतस्थिता श्रीलक्ष्मीजी सब देवताओंके सुनते हुए इन्द्रसे इस प्रकार बोलीं—॥ १९॥

श्रीरुवाच

परितुष्टास्मि देवेश स्तोत्रेणानेन ते हरे।
वरं वृणीष्व यस्त्विष्टो वरदाहं तवागता॥ २०॥

इन्द्र उवाच

वरदा यदि मे देवि वरार्हो यदि वाप्यहम्।
त्रैलोक्यं न त्वया त्याज्यमेष मेऽस्तु वरः परः॥ २१॥
स्तोत्रेण यस्तथैतेन त्वां स्तोष्यत्यब्धिसम्भवे।
स त्वया न परित्याज्यो द्वितीयोऽस्तु वरो मम॥ २२॥

श्रीरुवाच

त्रैलोक्यं त्रिदशश्रेष्ठ न सन्त्यक्ष्यामि वासव।
दत्तो वरो मया यस्ते स्तोत्राराधनतुष्टया॥ २३॥

श्रीलक्ष्मीजी बोलीं—हे देवेश्वर इन्द्र! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे अति प्रसन्न हूँ, तुमको जो अभीष्ट हो, वही वर माँग लो। मैं तुम्हें वर देनेके लिये ही यहाँ आयी हूँ॥ २०॥

इन्द्र बोले—हे देवि! यदि आप वर देना चाहती हैं और मैं भी यदि वर पानेयोग्य हूँ तो मुझको पहला वर तो यही दीजिये कि आप इस त्रिलोकीका कभी त्याग न करें॥ २१॥

और हे समुद्रसम्भवे! दूसरा वर मुझे यह दीजिये कि जो कोई आपकी इस स्तोत्रसे स्तुति करे, उसे आप कभी न त्यागें॥ २२॥

श्रीलक्ष्मीजी बोलीं—हे देवश्रेष्ठ इन्द्र! मैं अब इस त्रिलोकीको कभी न छोड़ूँगी। तुम्हारे स्तोत्रसे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें यह वर देती हूँ॥ २३॥

यश्च सायं तथा प्रातः स्तोत्रेणानेन मानवः।
मां स्तोष्यति न तस्याहं भविष्यामि पराङ्मुखी॥ २४॥

॥ इति श्रीविष्णुमहापुराणे श्रीलक्ष्मीस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

३९—महालक्ष्म्यष्टकम्

इन्द्र उवाच

नमस्तेऽस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते।
शङ्खचक्रगदाहस्ते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ १॥
नमस्ते गरुडारूढे कोलासुरभयङ्करि।
सर्वपापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ २॥
सर्वज्ञे सर्ववरदे सर्वदुष्टभयङ्करि।
सर्वदुःखहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ३॥

जो कोई मनुष्य प्रातःकाल और सायंकालके समय इस स्तोत्रसे मेरी स्तुति करेगा, उससे भी मैं कभी विमुख न होऊँगी॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीविष्णुमहापुराणमें श्रीलक्ष्मीस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

इन्द्र बोले—श्रीपीठपर स्थित और देवताओंसे पूजित होनेवाली हे महामाये! तुम्हें नमस्कार है। हाथमें शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाली हे महालक्ष्मि! तुम्हें प्रणाम है॥ १॥

गरुडपर आरूढ हो कोलासुरको भय देनेवाली और समस्त पापोंको हरनेवाली हे भगवति महालक्ष्मि! तुम्हें प्रणाम है॥ २॥

सब कुछ जाननेवाली, सबको वर देनेवाली, समस्त दुष्टोंको भय देनेवाली और सबके दुःखोंको दूर करनेवाली हे देवि महालक्ष्मि! तुम्हें नमस्कार है॥ ३॥

सिद्धिबुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि।
मन्त्रपूते सदा देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ४॥
आद्यन्तरहिते देवि आद्यशक्तिमहेश्वरि।
योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ५॥
स्थूलसूक्ष्ममहारौद्रे महाशक्तिमहोदरे।
महापापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ६॥
पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्मस्वरूपिणि।
परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ७॥
श्वेताम्बरधरे देवि नानालङ्कारभूषिते।
जगत्स्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ ८॥

सिद्धि, बुद्धि, भोग और मोक्ष देनेवाली हे मन्त्रपूत भगवति महालक्ष्मि! तुम्हें सदा प्रणाम है॥ ४॥

हे देवि! हे आदि-अन्तरहित आदिशक्ते! हे महेश्वरि! हे योगसे प्रकट हुई भगवति महालक्ष्मि! तुम्हें नमस्कार है॥ ५॥

हे देवि! तुम स्थूल, सूक्ष्म एवं महारौद्ररूपिणी हो, महाशक्ति हो, महोदरा हो और बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाली हो। हे देवि महालक्ष्मि! तुम्हें नमस्कार है॥ ६॥

हे कमलके आसनपर विराजमान परब्रह्मस्वरूपिणी देवि! हे परमेश्वरि! हे जगदम्ब! हे महालक्ष्मि! तुम्हें मेरा प्रणाम है॥ ७॥

हे देवि! तुम श्वेत वस्त्र धारण करनेवाली और नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषिता हो। सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त एवं अखिल लोकको जन्म देनेवाली हो। हे महालक्ष्मि! तुम्हें मेरा प्रणाम है॥ ८॥

महालक्ष्म्यष्टकं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिमान्नरः ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति राज्यं प्राप्नोति सर्वदा ॥ ९ ॥
एककाले पठेन्नित्यं महापापविनाशनम् ।
द्विकालं यः पठेन्नित्यं धनधान्यसमन्वितः ॥ १० ॥
त्रिकालं यः पठेन्नित्यं महाशत्रुविनाशनम् ।
महालक्ष्मीर्भवेन्नित्यं प्रसन्ना वरदा शुभा ॥ ११ ॥

॥ इति इन्द्रकृतं महालक्ष्म्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥

३२—महालक्ष्मीस्तुतिः

आगस्तिरुवाच

मातर्नमामि कमले कमलायताक्षि
श्रीविष्णुहृत्कमलवासिनि विश्वमातः ।

जो मनुष्य भक्तियुक्त होकर इस महालक्ष्म्यष्टक स्तोत्रका सदा पाठ करता है, वह सारी सिद्धियों और राज्यवैभवको प्राप्त कर सकता है ॥ ९ ॥

जो प्रतिदिन एक समय पाठ करता है, उसके बड़े-बड़े पापोंका नाश हो जाता है। जो प्रतिदिन दो समय पाठ करता है, वह धन-धान्यसे सम्पन्न होता है ॥ १० ॥

जो प्रतिदिन तीनों कालोंमें पाठ करता है, उसके महान् शत्रुओंका नाश हो जाता है और उसके ऊपर कल्याणकारिणी वरदायिनी महालक्ष्मी सदा ही प्रसन्न होती हैं ॥ ११ ॥

॥ इस प्रकार इन्द्रकृत महालक्ष्म्यष्टक सम्पूर्ण हुआ ॥

अगस्त्यजी बोले—कमलके समान विशाल नेत्रोंवाली माता कमले! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप भगवान् विष्णुके हृदयकमलमें

क्षीरोदजे कमलकोमलगर्भगौरि
लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये॥ १॥
त्वं श्रीरुपेन्द्रसदने मदनैकमात-
र्ज्योत्स्नासि चन्द्रमसि चन्द्रमनोहरास्ये।
सूर्ये प्रभासि च जगत्त्रितये प्रभासि
लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये॥ २॥
त्वं जातवेदसि सदा दहनात्मशक्ति-
र्वेधास्त्वया जगदिदं विविधं विदध्यात्।
विश्वम्भरोऽपि बिभृयादखिलं भवत्या
लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये॥ ३॥

निवास करनेवाली तथा सम्पूर्ण विश्वकी जननी हैं। कमलके कोमल गर्भके सदृश गौर वर्णवाली क्षीरसागरकी पुत्री महालक्ष्मि! आप अपनी शरणमें आये हुए प्रणतजनोंका पालन करनेवाली हैं। आप सदा मुझपर प्रसन्न हों॥ १॥

मदन (प्रद्युम्न)-की एकमात्र जननी रुक्मिणीरूपधारिणी मातः! आप भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें 'श्री' नामसे प्रसिद्ध हैं। चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली देवि! आप ही चन्द्रमामें चाँदनी हैं, सूर्यमें प्रभा हैं और तीनों लोकोंमें आप ही प्रभासित होती हैं। प्रणतजनोंको आश्रय देनेवाली माता लक्ष्मि! आप सदा मुझपर प्रसन्न हों॥ २॥

आप ही अग्निमें दाहिका शक्ति हैं। ब्रह्माजी आपकी ही सहायतासे विविध प्रकारके जगत्‌की रचना करते हैं। सम्पूर्ण विश्वका भरण-पोषण करनेवाले भगवान् विष्णु भी आपके ही भरोसे सबका पालन करते हैं। शरणमें आकर चरणमें मस्तक झुकानेवाले पुरुषोंकी निरन्तर रक्षा करनेवाली माता महालक्ष्मि! आप मुझपर प्रसन्न हों॥ ३॥

त्वत्त्यक्तमेतदमले हरते हरोऽपि
त्वं पासि हंसि विदधासि परावरासि।
ईड्यो बभूव हरिरप्यमले त्वदाप्त्या
लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये॥ ४॥
शूरः स एव स गुणी स बुधः स धन्यो
मान्यः स एव कुलशीलकलाकलापैः।
एकः शुचिः स हि पुमान् सकलेऽपि लोके
यत्रापतेत्तव शुभे करुणाकटाक्षः॥ ५॥
यस्मिन्वसेः क्षणमहो पुरुषे गजेऽश्वे
स्त्रैणे तृणे सरसि देवकुले गृहेऽन्ने।
रत्ने पतत्त्रिणि पशौ शयने धरायां
सश्रीकमेव सकले तदिहास्ति नान्यत्॥ ६॥

निर्मल स्वरूपवाली देवि! जिनको आपने त्याग दिया है, उन्हींका भगवान् रुद्र संहार करते हैं। वास्तवमें आप ही जगत्‌का पालन, संहार और सृष्टि करनेवाली हैं। आप ही कार्य–कारणरूप जगत् हैं। निर्मलस्वरूपा लक्ष्मि! आपको प्राप्त करके ही भगवान् श्रीहरि सबके पूज्य बन गये। माँ! आप प्रणतजनोंका सदैव पालन करनेवाली हैं, मुझपर प्रसन्न हों॥ ४॥

शुभे! जिस पुरुषपर आपका करुणापूर्ण कटाक्षपात होता है, संसारमें एकमात्र वही शूरवीर, गुणवान्, विद्वान्, धन्य, मान्य, कुलीन, शीलवान्, अनेक कलाओंका ज्ञाता और परम पवित्र माना जाता है॥ ५॥

देवि! आप जिस किसी पुरुष, हाथी, घोड़ा, स्त्रैण, तृण, सरोवर, देवमन्दिर, गृह, अन्न, रत्न, पशु-पक्षी, शय्या अथवा भूमिमें क्षणमात्र भी निवास करती हैं, समस्त संसारमें केवल वही शोभासम्पन्न होता है, दूसरा नहीं॥ ६॥

त्वत्स्पृष्टमेव सकलं शुचितां लभेत
त्वत्त्यक्तमेव सकलं त्वशुचीह लक्ष्मि।
त्वन्नाम यत्र च सुमङ्गलमेव तत्र
श्रीविष्णुपत्नि कमले कमलालयेऽपि॥ ७॥
लक्ष्मीं श्रियं च कमलां कमलालयां च
पद्मां रमां नलिनयुग्मकरां च मां च।
क्षीरोदजाममृतकुम्भकरामिरां च
विष्णुप्रियामिति सदा जपतां क्व दुःखम्॥ ८॥
ये पठिष्यन्ति च स्तोत्रं त्वद्भक्त्या मत्कृतं सदा।
तेषां कदाचित् संतापो माऽस्तु माऽस्तु दरिद्रता॥ ९॥
माऽस्तु चेष्टवियोगश्च माऽस्तु सम्पत्तिसंक्षयः।
सर्वत्र विजयश्चाऽस्तु विच्छेदो माऽस्तु सन्ततेः॥ १०॥

हे श्रीविष्णुपत्नि! हे कमले! हे कमलालये! हे माता लक्ष्मि! आपने जिसका स्पर्श किया है, वह पवित्र हो जाता है और आपने जिसे त्याग दिया है, वही सब इस जगत्में अपवित्र है। जहाँ आपका नाम है, वहीं उत्तम मंगल है॥ ७॥

जो लक्ष्मी, श्री, कमला, कमलालया, पद्मा, रमा, नलिनयुग्मकरा (दोनों हाथोंमें कमल धारण करनेवाली), मा, क्षीरोदजा, अमृतकुम्भकरा (हाथोंमें अमृतका कलश धारण करनेवाली), इरा और विष्णुप्रिया—इन नामोंका सदा जप करते हैं, उनके लिये कहीं दुःख नहीं है॥ ८॥

[इस स्तुतिसे प्रसन्न हो देवीके द्वारा वर माँगनेके लिये कहनेपर अगस्त्य मुनि बोले—हे देवि!] मेरे द्वारा की गयी इस स्तुतिका जो भक्तिपूर्वक पाठ करेंगे, उन्हें कभी संताप न हो और न कभी दरिद्रता हो, अपने इष्टसे कभी उनका वियोग न हो और न कभी धनका नाश ही हो। उन्हें सर्वत्र विजय प्राप्त हो और उनकी संतानका कभी उच्छेद न हो॥ ९-१०॥

श्रीरुवाच

एवमस्तु मुने सर्वं यत्त्वया परिभाषितम्।
एतत् स्तोत्रस्य पठनं मम सांनिध्यकारणम्॥ ११॥

॥ इति श्रीस्कन्दमहापुराणे काशीखण्डे अगस्तिकृता महालक्ष्मीस्तुतिः सम्पूर्णा॥

३३—श्रीसूक्तम्

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥ १॥
तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्॥ २॥

श्रीलक्ष्मीजी बोलीं—हे मुने! जैसा आपने कहा है, वैसा ही होगा। इस स्तोत्रका पाठ मेरी सांनिधि प्राप्त करानेवाला है॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके काशीखण्डमें अगस्तिकृत महालक्ष्मीस्तुति सम्पूर्ण हुई॥

हे जातवेदा (सर्वज्ञ) अग्निदेव! सुवर्णके-से रंगवाली, किंचित् हरितवर्णविशिष्टा, सोने और चाँदीके हार पहननेवाली, चन्द्रवत् प्रसन्नकान्ति, स्वर्णमयी लक्ष्मीदेवीको मेरे लिये आवाहन करो॥ १॥

अग्ने! उन लक्ष्मीदेवीको, जिनका कभी विनाश नहीं होता तथा जिनके आगमनसे मैं सोना, गौ, घोड़े तथा पुत्रादिको प्राप्त करूँगा, मेरे लिये आवाहन करो॥ २॥

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्॥ ३॥
कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां
ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां
तामिहोप ह्वये श्रियम्॥ ४॥
चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं
श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्र पद्ये
अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे॥ ५॥

जिन देवीके आगे घोड़े तथा उनके पीछे रथ रहते हैं तथा जो हस्तिनादको सुनकर प्रमुदित होती हैं, उन्हीं श्रीदेवीका मैं आवाहन करता हूँ; लक्ष्मीदेवी मुझे प्राप्त हों॥ ३॥

जो साक्षात् ब्रह्मरूपा, मन्द-मन्द मुसकरानेवाली, सोनेके आवरणसे आवृत, दयार्द्र, तेजोमयी, पूर्णकामा, भक्तानुग्रहकारिणी, कमलके आसनपर विराजमान तथा पद्मवर्णा हैं, उन लक्ष्मीदेवीका मैं यहाँ आवाहन करता हूँ॥ ४॥

मैं चन्द्रके समान शुभ्र कान्तिवाली, सुन्दर द्युतिशालिनी, यशसे दीप्तिमती, स्वर्गलोकमें देवगणोंके द्वारा पूजिता, उदारशीला, पद्महस्ता लक्ष्मीदेवीकी शरण ग्रहण करता हूँ। मेरा दारिद्र्य दूर हो जाय। मैं आपको शरण्यके रूपमें वरण करता हूँ॥ ५॥

आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो
वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु
या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः॥ ६॥
उपैतु मां देवसखः
कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन्
कीर्तिमृद्धिं ददातु मे॥ ७॥
क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्॥ ८॥
गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम्॥ ९॥

हे सूर्यके समान प्रकाशस्वरूपे! तुम्हारे ही तपसे वृक्षोंमें श्रेष्ठ मंगलमय बिल्ववृक्ष उत्पन्न हुआ। उसके फल हमारे बाहरी और भीतरी दारिद्र्यको दूर करें॥ ६॥

देवि! देवसखा कुबेर और उनके मित्र मणिभद्र तथा दक्ष-प्रजापतिकी कन्या कीर्ति मुझे प्राप्त हों अर्थात् मुझे धन और यशकी प्राप्ति हो। मैं इस राष्ट्रमें—देशमें उत्पन्न हुआ हूँ, मुझे कीर्ति और ऋद्धि प्रदान करें॥ ७॥

लक्ष्मीकी ज्येष्ठ बहिन अलक्ष्मी (दरिद्रताकी अधिष्ठात्री देवी) का, जो क्षुधा और पिपासासे मलिन—क्षीणकाय रहती हैं, मैं नाश चाहता हूँ। देवि! मेरे घरसे सब प्रकारके दारिद्र्य और अमंगलको दूर करो॥ ८॥

जो दुराधर्षा तथा नित्यपुष्टा हैं तथा गोबरसे (पशुओंसे) युक्त गन्धगुणवती पृथिवी ही जिनका स्वरूप है, सब भूतोंकी स्वामिनी उन लक्ष्मीदेवीका मैं यहाँ—अपने घरमें आवाहन करता हूँ॥ ९॥

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥ १० ॥
कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥ ११ ॥
आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥ १२ ॥
आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ १३ ॥
आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ १४ ॥

मनकी कामनाओं और संकल्पकी सिद्धि एवं वाणीकी सत्यता मुझे प्राप्त हो; गौ आदि पशुओं एवं विभिन्न अन्नों—भोग्य पदार्थोंके रूपमें तथा यशके रूपमें श्रीदेवी हमारे यहाँ आगमन करें ॥ १० ॥

लक्ष्मीके पुत्र कर्दमकी हम संतान हैं। कर्दम ऋषि! आप हमारे यहाँ उत्पन्न हों तथा पद्मोंकी माला धारण करनेवाली माता लक्ष्मीदेवीको हमारे कुलमें स्थापित करें ॥ ११ ॥

जल स्निग्ध पदार्थोंकी सृष्टि करे। लक्ष्मीपुत्र चिक्लीत! आप भी मेरे घरमें वास करें और माता लक्ष्मीदेवीका मेरे कुलमें निवास करायें ॥ १२ ॥

अग्ने! आर्द्रस्वभावा, कमलहस्ता, पुष्टिरूपा, पीतवर्णा, पद्मोंकी माला धारण करनेवाली, चन्द्रमाके समान शुभ्र कान्तिसे युक्त, स्वर्णमयी लक्ष्मीदेवीका मेरे यहाँ आवाहन करें ॥ १३ ॥

अग्ने! जो दुष्टोंका निग्रह करनेवाली होनेपर भी कोमल स्वभावकी हैं, जो मंगलदायिनी, अवलम्बन प्रदान करनेवाली यष्टिरूपा, सुन्दर वर्णवाली, सुवर्णमालाधारिणी, सूर्यस्वरूपा तथा हिरण्मयी हैं, उन लक्ष्मीदेवीका मेरे लिये आवाहन करें ॥ १४ ॥

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्॥ १५॥
यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत्॥ १६॥
पद्मानने पद्मविपद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि।
विश्वप्रिये विष्णुमनोऽनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि सं नि धत्स्व॥ १७॥
पद्मानने पद्मऊरू पद्माक्षि पद्मसम्भवे।
तन्मे भजसि पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम्॥ १८॥
अश्वदायि गोदायि धनदायि महाधने।
धनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे॥ १९॥

अग्ने! कभी नष्ट न होनेवाली उन लक्ष्मीदेवीका मेरे लिये आवाहन करें, जिनके आगमनसे बहुत-सा धन, गौएँ, दासियाँ, अश्व और पुत्रादिको हम प्राप्त करें॥ १५॥

जिसे लक्ष्मीकी कामना हो, वह प्रतिदिन पवित्र और संयमशील होकर अग्निमें घीकी आहुतियाँ दे तथा इन पंद्रह ऋचाओंवाले श्रीसूक्तका निरन्तर पाठ करे॥ १६॥

कमल-सदृश मुखवाली! कमल-दलपर अपने चरणकमल रखनेवाली! कमलमें प्रीति रखनेवाली! कमल-दलके समान विशाल नेत्रोंवाली! समग्र संसारके लिये प्रिय! भगवान् विष्णुके मनके अनुकूल आचरण करनेवाली! आप अपने चरणकमलको मेरे हृदयमें स्थापित करें॥ १७॥

कमलके समान मुखमण्डलवाली! कमलके समान ऊरुप्रदेशवाली! कमल-सदृश नेत्रोंवाली! कमलसे आविर्भूत होनेवाली! पद्माक्षि! आप उसी प्रकार मेरा पालन करें, जिससे मुझे सुख प्राप्त हो॥ १८॥

अश्वदायिनी, गोदायिनी, धनदायिनी, महाधनस्वरूपिणी हे देवि! मेरे पास [सदा] धन रहे, आप मुझे सभी अभिलषित वस्तुएँ प्रदान करें॥ १९॥

पुत्रपौत्रधनं धान्यं हस्त्यश्वाश्वतरी रथम्।
प्रजानां भवसि माता आयुष्मन्तं करोतु मे॥ २०॥
धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः।
धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणो धनमश्विना॥ २१॥
वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः॥ २२॥
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्त्या श्रीसूक्तजापिनाम्॥ २३॥
सरसिजनिलये सरोजहस्ते
धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे।

आप प्राणियोंकी माता हैं। मेरे पुत्र, पौत्र, धन, धान्य, हाथी, घोड़े, खच्चर तथा रथको दीर्घ आयुसे सम्पन्न करें॥ २०॥

अग्नि, वायु, सूर्य, वसुगण, इन्द्र, बृहस्पति, वरुण तथा अश्विनीकुमार—ये सब वैभवस्वरूप हैं॥ २१॥

हे गरुड! आप सोमपान करें। वृत्रासुरके विनाशक इन्द्र सोमपान करें। वे गरुड तथा इन्द्र धनवान् सोमपान करनेकी इच्छावालेके सोमको मुझ सोमपानकी अभिलाषावालेको प्रदान करें॥ २२॥

भक्तिपूर्वक श्रीसूक्तका जप करनेवाले, पुण्यशाली लोगोंको न क्रोध होता है, न ईर्ष्या होती है, न लोभ ग्रसित कर सकता है और न उनकी बुद्धि दूषित ही होती है॥ २३॥

कमलवासिनी, हाथमें कमल धारण करनेवाली, अत्यन्त धवल

भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे
त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम् ॥ २४ ॥
विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम् ।
लक्ष्मीं प्रियसखीं भूमिं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ॥ २५ ॥
महालक्ष्म्यै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि ।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥ २६ ॥
आनन्दः कर्दमः श्रीदश्चिक्लीत इति विश्रुताः ।
ऋषयः श्रियः पुत्राश्च श्रीर्देवीर्देवता मताः ॥ २७ ॥
ऋणरोगादिदारिद्र्यपापक्षुदपमृत्यवः ।
भयशोकमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा ॥ २८ ॥

वस्त्र, गन्धानुलेप तथा पुष्पहारसे सुशोभित होनेवाली, भगवान् विष्णुकी प्रिया, लावण्यमयी तथा त्रिलोकीको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली हे भगवति! मुझपर प्रसन्न होइये ॥ २४ ॥

भगवान् विष्णुकी भार्या, क्षमास्वरूपिणी, माधवी, माधवप्रिया, प्रियसखी, अच्युतवल्लभा, भूदेवी भगवती लक्ष्मीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २५ ॥

हम विष्णुपत्नी महालक्ष्मीको जानते हैं तथा उनका ध्यान करते हैं। वे लक्ष्मीजी [सन्मार्गपर चलनेहेतु] हमें प्रेरणा प्रदान करें ॥ २६ ॥

पूर्व कल्पमें जो आनन्द, कर्दम, श्रीद और चिक्लीत नामक विख्यात चार ऋषि हुए थे। इसी नामसे दूसरे कल्पमें भी वे ही सब लक्ष्मीके पुत्र हुए। बादमें उन्हीं पुत्रोंसे महालक्ष्मी अतिप्रकाशमान शरीरवाली हुईं, उन्हीं महालक्ष्मीसे देवता भी अनुगृहीत हुए ॥ २७ ॥

ऋण, रोग, दरिद्रता, पाप, क्षुधा, अपमृत्यु, भय, शोक तथा मानसिक ताप आदि—ये सभी मेरी बाधाएँ सदाके लिये नष्ट हो जायँ ॥ २८ ॥

श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधाच्छोभमानं महीयते।
धनं धान्यं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ॥ २९ ॥

॥ इति ऋक्परिशिष्टोक्तं श्रीसूक्तं सम्पूर्णम् ॥

३४—लक्ष्मीस्तोत्रम्

इन्द्र उवाच

ॐ नमः कमलवासिन्यै नारायण्यै नमो नमः।
कृष्णप्रियायै सारायै पद्मायै च नमो नमः ॥ १ ॥
पद्मपत्रेक्षणायै च पद्मास्यायै नमो नमः।
पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमो नमः ॥ २ ॥

भगवती महालक्ष्मी [मानवके लिये] ओज, आयुष्य, आरोग्य, धन-धान्य, पशु, अनेक पुत्रोंकी प्राप्ति तथा सौ वर्षके दीर्घ जीवनका विधान करें और मानव इनसे मण्डित होकर प्रतिष्ठा प्राप्त करे ॥ २९ ॥

॥ इस प्रकार ऋक्परिशिष्टमें कथित श्रीसूक्त सम्पूर्ण हुआ ॥

देवराज इन्द्र बोले—भगवती कमलवासिनीको नमस्कार है। देवी नारायणीको बार-बार नमस्कार है। संसारकी सारभूता कृष्णप्रिया भगवती पद्माको अनेकशः नमस्कार है ॥ १ ॥

कमलरत्नके समान नेत्रवाली कमलमुखी भगवती महालक्ष्मीको नमस्कार है। पद्मासना, पद्मिनी एवं वैष्णवी नामसे प्रसिद्ध भगवती महालक्ष्मीको बार-बार नमस्कार है ॥ २ ॥

सर्वसम्पत्स्वरूपायै सर्वदात्र्यै नमो नमः।
सुखदायै मोक्षदायै सिद्धिदायै नमो नमः ॥ ३ ॥
हरिभक्तिप्रदात्र्यै च हर्षदात्र्यै नमो नमः।
कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै नमो नमः ॥ ४ ॥
कृष्णशोभास्वरूपायै रत्नपद्मे च शोभने।
सम्पत्त्यधिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै नमो नमः ॥ ५ ॥
शस्याधिष्ठातृदेव्यै च शस्यायै च नमो नमः।
नमो बुद्धिस्वरूपायै बुद्धिदायै नमो नमः ॥ ६ ॥
वैकुण्ठे या महालक्ष्मीर्लक्ष्मीः क्षीरोदसागरे।
स्वर्गलक्ष्मीरिन्द्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये ॥ ७ ॥

सर्वसम्पत्स्वरूपिणी सर्वदात्री देवीको नमस्कार है। सुखदायिनी, मोक्षदायिनी और सिद्धिदायिनी देवीको बारम्बार नमस्कार है ॥ ३ ॥

भगवान् श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न करनेवाली तथा हर्ष प्रदान करनेमें परम कुशल देवीको बार-बार नमस्कार है। भगवान् श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर विराजमान एवं उनकी हृदयेश्वरी देवीको बारम्बार प्रणाम है ॥ ४ ॥

रत्नपद्मे! शोभने! तुम श्रीकृष्णकी शोभास्वरूपा हो, सम्पूर्ण सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवी एवं महादेवी हो; तुम्हें मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥

शस्यकी अधिष्ठात्री देवी एवं शस्यस्वरूपा हो, तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। बुद्धिस्वरूपा एवं बुद्धिप्रदा भगवतीके लिये अनेकशः प्रणाम है ॥ ६ ॥

देवि! तुम वैकुण्ठमें महालक्ष्मी, क्षीरसमुद्रमें लक्ष्मी, राजाओंके

गृहलक्ष्मीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता।
सुरभी सा गवां माता दक्षिणा यज्ञकामिनी॥ ८॥
अदितिर्देवमाता त्वं कमला कमलालये।
स्वाहा त्वं च हविर्दाने कव्यदाने स्वधा स्मृता॥ ९॥
त्वं हि विष्णुस्वरूपा च सर्वाधारा वसुन्धरा।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा॥ १०॥
क्रोधहिंसावर्जिता च वरदा च शुभानना।
परमार्थप्रदा त्वं च हरिदास्यप्रदा परा॥ ११॥
यया विना जगत् सर्वं भस्मीभूतमसारकम्।
जीवन्मृतं च विश्वं च शवतुल्यं यया विना॥ १२॥

भवनमें राजलक्ष्मी, इन्द्रके स्वर्गमें स्वर्गलक्ष्मी, गृहस्थोंके घरमें गृहलक्ष्मी, प्रत्येक घरमें गृहदेवता, गोमाता सुरभि और यज्ञकी पत्नी दक्षिणाके रूपमें विराजमान रहती हो॥ ७-८॥

तुम देवताओंकी माता अदिति हो। कमलालयवासिनी कमला भी तुम्हीं हो। हव्य प्रदान करते समय 'स्वाहा' और कव्य प्रदान करनेके अवसरपर 'स्वधा' का जो उच्चारण होता है, वह तुम्हारा ही नाम है॥ ९॥

सबको धारण करनेवाली विष्णुस्वरूपा पृथ्वी तुम्हीं हो। भगवान् नारायणकी उपासनामें सदा तत्पर रहनेवाली देवि! तुम शुद्ध सत्त्वस्वरूपा हो॥ १०॥

तुममें क्रोध और हिंसाके लिये किंचिन्मात्र भी स्थान नहीं है। तुम्हें वरदा, शारदा, शुभा, परमार्थदा एवं हरिदास्यप्रदा कहते हैं॥ ११॥

तुम्हारे बिना सारा जगत् भस्मीभूत एवं निःसार है; जीते-जी ही मृतक है, शवके तुल्य है॥ १२॥

सर्वेषां च परा त्वं हि सर्वबान्धवरूपिणी।
यया विना न सम्भाष्यो बान्धवैर्बान्धवः सदा॥ १३॥
त्वया हीनो बन्धुहीनस्त्वया युक्तः सबान्धवः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं च कारणरूपिणी॥ १४॥
यथा माता स्तनन्धानां शिशूनां शैशवे सदा।
तथा त्वं सर्वदा माता सर्वेषां सर्वरूपतः॥ १५॥
मातृहीनः स्तनत्यक्तः स चेज्जीवति दैवतः।
त्वया हीनो जनः कोऽपि न जीवत्येव निश्चितम्॥ १६॥
सुप्रसन्नस्वरूपा त्वं मां प्रसन्ना भवाम्बिके।
वैरिग्रस्तं च विषयं देहि मह्यं सनातनि॥ १७॥

तुम सम्पूर्ण प्राणियोंकी श्रेष्ठ माता हो। सबके बान्धवरूपमें तुम्हारा ही पधारना हुआ है। तुम्हारे बिना भाई भी भाई-बन्धुओंके लिये बात करनेयोग्य भी नहीं रहता है॥ १३॥

जो तुमसे हीन है, वह बन्धुजनोंसे हीन है तथा जो तुमसे युक्त है, वह बन्धुजनोंसे भी युक्त है। तुम्हारी ही कृपासे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होते हैं॥ १४॥

जिस प्रकार बचपनमें दुधमुँहे बच्चोंके लिये माता है, वैसे ही तुम अखिल जगत्‌की जननी होकर सबकी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण किया करती हो॥ १५॥

स्तनपायी बालक माताके न रहनेपर भाग्यवश जी भी सकता है, परंतु तुम्हारे बिना कोई भी नहीं जी सकता। यह बिलकुल निश्चित है॥ १६॥

हे अम्बिके! सदा प्रसन्न रहना तुम्हारा स्वाभाविक गुण है। अतः मुझपर प्रसन्न हो जाओ। सनातनी! मेरा राज्य शत्रुओंके हाथमें चला गया है, तुम्हारी कृपासे वह मुझे पुनः प्राप्त हो जाय॥ १७॥

वयं यावत् त्वया हीना बन्धुहीनाश्च भिक्षुकाः।
सर्वसम्पद्विहीनाश्च तावदेव हरिप्रिये॥ १८॥
राज्यं देहि श्रियं देहि बलं देहि सुरेश्वरि।
कीर्तिं देहि धनं देहि यशो मह्यं च देहि वै॥ १९॥
कामं देहि मतिं देहि भोगान् देहि हरिप्रिये।
ज्ञानं देहि च धर्मं च सर्वसौभाग्यमीप्सितम्॥ २०॥
प्रभावं च प्रतापं च सर्वाधिकारमेव च।
जयं पराक्रमं युद्धे परमैश्वर्यमेव च॥ २१॥

फलश्रुतिः

इदं स्तोत्रं महापुण्यं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः।
कुबेरतुल्यः स भवेद् राजराजेश्वरो महान्॥

हरिप्रिये! मुझे जबतक तुम्हारा दर्शन नहीं मिला था, तभीतक मैं बन्धुहीन, भिक्षुक तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे शून्य था॥ १८॥

सुरेश्वरि! अब तो मुझे राज्य दो, श्री दो, बल दो, कीर्ति दो, धन दो और यश भी प्रदान करो॥ १९॥

हरिप्रिये! मनोवांछित वस्तुएँ दो, बुद्धि दो, भोग दो, ज्ञान दो, धर्म दो तथा सम्पूर्ण अभिलषित सौभाग्य दो॥ २०॥

इसके सिवा मुझे प्रभाव, प्रताप, सम्पूर्ण अधिकार, युद्धमें विजय, पराक्रम तथा परम ऐश्वर्यकी प्राप्ति भी कराओ॥ २१॥

फलश्रुति

यह स्तोत्र महान् पवित्र है। इसका त्रिकाल पाठ करनेवाला

सिद्धस्तोत्रं यदि पठेत् सोऽपि कल्पतरुर्नरः।
पञ्चलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥
सिद्धिस्तोत्रं यदि पठेन्मासमेकं च संयतः।
महासुखी च राजेन्द्रो भविष्यति न संशयः॥

॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे इन्द्रकृतं लक्ष्मीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

बड़भागी पुरुष कुबेरके समान राजाधिराज हो सकता है। पाँच लाख जप करनेपर मनुष्योंके लिये यह स्तोत्र सिद्ध होता है। यदि इस सिद्धस्तोत्रका कोई निरन्तर एक महीनेतक पाठ करे तो वह महान् सुखी एवं राजेन्द्र हो जायगा—इसमें कोई संशय नहीं है।

॥ इस प्रकार श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणमें इन्द्रकृत लक्ष्मीस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ ॥

अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुञ्जवर्णा
करकमलधृतेष्टाभीतियुग्माम्बुजा च।
मणिकटकविचित्राऽलङ्कृताऽकल्पजालैः
सकलभुवनमाता संततं श्रीः श्रियै नः॥

अर्थात् हलके लाल (गुलाबी) रंगके कमलदलपर बैठी हुई, कमल-परागकी राशिके समान पीतवर्णवाली, चारों हाथोंमें क्रमशः वर-मुद्रा, अभय-मुद्रा और दो कमल-पुष्प धारण किये हुए, मणिमय कड़ोंसे विचित्र शोभा धारण करनेवाली और अलंकारसमूहोंसे अलंकृत समस्त लोकोंकी जननी श्रीमहालक्ष्मीदेवी निरन्तर हमें श्रीसम्पन्न करें। [सौभाग्यलक्ष्मी-उपनिषद्]

सीतास्तोत्राणि

३५—श्रीजानकीस्तुतिः

जानकि त्वां नमस्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम्॥
दारिद्र्यरणसंहर्त्रीं भक्तानामिष्टदायिनीम्।
विदेहराजतनयां राघवानन्दकारिणीम्॥
भूमेर्दुहितरं विद्यां नमामि प्रकृतिं शिवाम्।
पौलस्त्यैश्वर्यसंहर्त्रीं भक्ताभीष्टां सरस्वतीम्॥
पतिव्रताधुरीणां त्वां नमामि जनकात्मजाम्।
अनुग्रहपरामृद्धिमनघां हरिवल्लभाम्॥
आत्मविद्यां त्रयीरूपामुमारूपां नमाम्यहम्।
प्रसादाभिमुखीं लक्ष्मीं क्षीराब्धितनयां शुभाम्॥

[श्रीहनुमानजी बोले—] जनकनन्दिनी! आपको नमस्कार करता हूँ। आप सब पापोंका नाश तथा दारिद्र्यका संहार करनेवाली हैं। भक्तोंको अभीष्ट वस्तु देनेवाली भी आप ही हैं। राघवेन्द्र श्रीरामको आनन्द प्रदान करनेवाली विदेहराज जनककी लाडली श्रीकिशोरीजीको मैं प्रणाम करता हूँ। आप पृथ्वीकी कन्या और विद्या (ज्ञान)-स्वरूपा हैं, कल्याणमयी प्रकृति भी आप ही हैं। रावणके ऐश्वर्यका संहार तथा भक्तोंके अभीष्टका दान करनेवाली सरस्वतीरूपा भगवती सीताको मैं नमस्कार करता हूँ। पतिव्रताओंमें अग्रगण्य आप श्रीजनकदुलारीको मैं प्रणाम करता हूँ। आप सबपर अनुग्रह करनेवाली समृद्धि, पापरहित और विष्णुप्रिया लक्ष्मी हैं।

आप ही आत्मविद्या, वेदत्रयी तथा पार्वतीस्वरूपा हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप ही क्षीरसागरकी कन्या महालक्ष्मी हैं, जो

नमामि चन्द्रभगिनीं सीतां सर्वाङ्गसुन्दरीम्।
नमामि धर्मनिलयां करुणां वेदमातरम्॥
पद्मालयां पद्महस्तां विष्णुवक्षःस्थलालयाम्।
नमामि चन्द्रनिलयां सीतां चन्द्रनिभाननाम्॥
आह्लादरूपिणीं सिद्धिं शिवां शिवकरीं सतीम्।
नमामि विश्वजननीं रामचन्द्रेष्टवल्लभाम्।
सीतां सर्वानवद्याङ्गीं भजामि सततं हृदा॥

॥ इति श्रीस्कन्दमहापुराणे सेतुमाहात्म्ये श्रीजानकीस्तुतिः सम्पूर्णा ॥

भक्तोंको कृपा-प्रसाद प्रदान करनेके लिये सदा उत्सुक रहती हैं। चन्द्रमाकी भगिनी (लक्ष्मीस्वरूपा) सर्वांगसुन्दरी सीताको मैं प्रणाम करता हूँ। धर्मकी आश्रयभूता करुणामयी वेदमाता गायत्रीस्वरूपिणी श्रीजानकीको मैं नमस्कार करता हूँ। आपका कमलमें निवास है, आप ही हाथमें कमल धारण करनेवाली तथा भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें निवास करनेवाली लक्ष्मी हैं, चन्द्रमण्डलमें भी आपका निवास है, आप चन्द्रमुखी सीतादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ। आप श्रीरघुनन्दनकी आह्लादमयी शक्ति हैं, कल्याणमयी सिद्धि हैं और भगवान् शिवकी अर्द्धांगिनी कल्याणकारिणी सती हैं। श्रीरामचन्द्रजीकी परम प्रियतमा जगदम्बा जानकीको मैं प्रणाम करता हूँ। सर्वांगसुन्दरी सीताजीका मैं अपने हृदयमें निरन्तर चिन्तन करता हूँ।

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणान्तर्गत सेतुमाहात्म्यमें
श्रीजानकीस्तुति सम्पूर्ण हुई ॥

३६—श्रीसीता-स्तुति

कबहुँक अंब, अवसर पाइ।

मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ॥ १॥

दीन, सब अँगहीन, छीन, मलीन, अघी अघाइ।

नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ॥ २॥

बूझिहैं 'सो है कौन', कहिबी नाम दसा जनाइ।

सुनत राम कृपालुके मेरी बिगरिऔ बनि जाइ॥ ३॥

जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाइ।

तरै तुलसीदास भव तव नाथ-गुन-गन गाइ॥ ४॥

(विनय-पत्रिका)

हे माता! कभी अवसर हो तो कुछ करुणाकी बात छेड़कर श्रीरामचन्द्रजीको मेरी भी याद दिला देना, (इसीसे मेरा काम बन जायगा) ॥ १ ॥

यों कहना कि एक अत्यन्त दीन, सर्व साधनोंसे हीन, मनमलीन, दुर्बल और पूरा पापी मनुष्य आपकी दासी (तुलसी)-का दास कहलाकर और आपका नाम ले-लेकर पेट भरता है॥ २॥

इसपर प्रभु कृपा करके पूछें कि वह कौन है, तो मेरा नाम और मेरी दशा उन्हें बता देना। कृपालु रामचन्द्रजीके इतना सुन लेनेसे ही मेरी सारी बिगड़ी बात बन जायगी ॥ ३ ॥

हे जगज्जननी जानकीजी! यदि इस दासको आपने इस प्रकार वचनोंसे ही सहायता कर दी तो यह तुलसीदास आपके स्वामीकी गुणावली गाकर भव-सागरसे तर जायगा॥ ४॥

३७—श्रीसीता-स्तुति

कबहुँ समय सुधि द्यायबी, मेरी मातु जानकी।
जन कहाइ नाम लेत हौं,
किये पन चातक ज्यों, प्यास प्रेम-पानकी॥ १॥
सरल कहाइ प्रकृति आपु जानिए करुना-निधानकी।
निजगुन, अरिकृत अनहितौ,
दास-दोष सुरति चित रहत न दिये दानकी॥ २॥
बानि बिसारनसील है मानद अमानकी।
तुलसीदास न बिसारिये, मन करम
बचन जाके, सपनेहुँ गति न आनकी॥ ३॥

(विनय-पत्रिका)

हे जानकी माता! कभी मौका पाकर श्रीरामचन्द्रजीको मेरी याद दिला देना। मैं उन्हींका दास कहाता हूँ, उन्हींका नाम लेता हूँ, उन्हींके लिये पपीहेकी तरह प्रण किये बैठा हूँ, मुझे उनके स्वाती-जलरूपी प्रेमरसकी बड़ी प्यास लग रही है॥ १॥

यह तो आप जानती ही हैं कि करुणा-निधान रामजीका स्वभाव बड़ा सरल है, उन्हें अपना गुण, शत्रुद्वारा किया हुआ अनिष्ट, दासका अपराध और दिये हुए दानकी बात कभी याद ही नहीं रहती॥ २॥

उनकी आदत भूल जानेकी है, जिसका कहीं मान नहीं होता, उसको वह मान दिया करते हैं; पर वह भी भूल जाते हैं। हे माता! तुम उनसे कहना कि तुलसीदासको न भूलिये; क्योंकि उसे मन, वचन और कर्मसे स्वप्नमें भी किसी दूसरेका आश्रय नहीं है॥ ३॥

राधास्तोत्राणि

३८—राधाषोडशनामस्तोत्रम्

श्रीनारायण उवाच

राधा रासेश्वरी रासवासिनी रसिकेश्वरी।
कृष्णप्राणाधिका कृष्णप्रिया कृष्णस्वरूपिणी॥ १॥
कृष्णवामाङ्गसम्भूता परमानन्दरूपिणी।
कृष्णा वृन्दावनी वृन्दा वृन्दावनविनोदिनी॥ २॥
चन्द्रावली चन्द्रकान्ता शरच्चन्द्रप्रभानना।
नामान्येतानि साराणि तेषामभ्यन्तराणि च॥ ३॥
राधेत्येवं च संसिद्धौ राकारो दानवाचकः।
स्वयं निर्वाणदात्री या सा राधा परिकीर्तिता॥ ४॥

श्रीनारायणने कहा—राधा, रासेश्वरी, रासवासिनी, रसिकेश्वरी, कृष्णप्राणाधिका, कृष्णप्रिया, कृष्णस्वरूपिणी, कृष्णवामांगसम्भूता, परमानन्दरूपिणी, कृष्णा, वृन्दावनी, वृन्दा, वृन्दावनविनोदिनी, चन्द्रावली, चन्द्रकान्ता और शरच्चन्द्रप्रभानना—ये सारभूत सोलह नाम उन सहस्र नामोंके ही अन्तर्गत हैं॥ १—३॥

राधा शब्दमें 'धा' का अर्थ है संसिद्धि (निर्वाण) तथा 'रा' दानवाचक है। जो स्वयं निर्वाण (मोक्ष) प्रदान करनेवाली हैं; वे 'राधा' कही गयी हैं॥ ४॥

रासेश्वरस्य पत्नीयं तेन रासेश्वरी स्मृता।
रासे च वासो यस्याश्च तेन सा रासवासिनी॥ ५॥
सर्वासां रसिकानां च देवीनामीश्वरी परा।
प्रवदन्ति पुरा सन्तस्तेन तां रसिकेश्वरीम्॥ ६॥
प्राणाधिका प्रेयसी सा कृष्णस्य परमात्मनः।
कृष्णप्राणाधिका सा च कृष्णेन परिकीर्तिता॥ ७॥
कृष्णस्यातिप्रिया कान्ता कृष्णो वास्याः प्रियः सदा।
सर्वैर्देवगणैरुक्ता तेन कृष्णप्रिया स्मृता॥ ८॥
कृष्णरूपं संनिधातुं या शक्ता चावलीलया।
सर्वांशैः कृष्णसदृशी तेन कृष्णस्वरूपिणी॥ ९॥
वामाङ्गार्धेन कृष्णस्य या सम्भूता परा सती।
कृष्णवामाङ्गसम्भूता तेन कृष्णेन कीर्तिता॥ १०॥

रासेश्वरकी ये पत्नी हैं; इसलिये इनका नाम 'रासेश्वरी' है। इनका रासमण्डलमें निवास है; इससे वे 'रासवासिनी' कहलाती हैं॥ ५॥

वे समस्त रसिक देवियोंकी परमेश्वरी हैं; अतः पुरातन संत-महात्मा उन्हें 'रसिकेश्वरी' कहते हैं॥ ६॥

परमात्मा श्रीकृष्णके लिये वे प्राणोंसे भी अधिक प्रियतमा हैं; अतः साक्षात् श्रीकृष्णने ही उन्हें 'कृष्णप्राणाधिका' नाम दिया है॥ ७॥

वे श्रीकृष्णकी अत्यन्त प्रिया कान्ता हैं अथवा श्रीकृष्ण ही सदा उन्हें प्रिय हैं, इसलिये समस्त देवताओंने उन्हें 'कृष्णप्रिया' कहा है॥ ८॥

वे श्रीकृष्णरूपको लीलापूर्वक निकट लानेमें समर्थ हैं तथा सभी अंशोंमें श्रीकृष्णके सदृश हैं; अतः 'कृष्णस्वरूपिणी' कही गयी हैं॥ ९॥

परम सती श्रीराधा श्रीकृष्णके आधे वामांगभागसे प्रकट हुई हैं; अतः श्रीकृष्णने स्वयं ही उन्हें 'कृष्णवामांगसम्भूता' कहा है॥ १०॥

परमानन्दराशिश्च स्वयं मूर्तिमती सती।
श्रुतिभिः कीर्तिता तेन परमानन्दरूपिणी॥ ११॥
कृषिर्मोक्षार्थवचनो न एवोत्कृष्टवाचकः।
आकारो दातृवचनस्तेन कृष्णा प्रकीर्तिता॥ १२॥
अस्ति वृन्दावनं यस्यास्तेन वृन्दावनी स्मृता।
वृन्दावनस्याधिदेवी तेन वाथ प्रकीर्तिता॥ १३॥
सङ्घः सखीनां वृन्दः स्यादकारोऽप्यस्तिवाचकः।
सखिवृन्दोऽस्ति यस्याश्च सा वृन्दा परिकीर्तिता॥ १४॥
वृन्दावने विनोदश्च सोऽस्या ह्यस्ति च तत्र वै।
वेदा वदन्ति तां तेन वृन्दावनविनोदिनीम्॥ १५॥

सती श्रीराधा स्वयं परमानन्दकी मूर्तिमती राशि हैं; अतः श्रुतियोंने उन्हें 'परमानन्दरूपिणी' की संज्ञा दी है॥ ११॥

'कृष्' शब्द मोक्षका वाचक है, 'ण' उत्कृष्टताका बोधक है और 'आकार' दाताके अर्थमें आता है। वे उत्कृष्ट मोक्षकी दात्री हैं; इसलिये 'कृष्णा' कही गयी हैं॥ १२॥

वृन्दावन उन्हींका है; इसलिये वे 'वृन्दावनी' कही गयी हैं अथवा वृन्दावनकी अधिदेवी होनेके कारण उन्हें यह नाम प्राप्त हुआ है॥ १३॥

सखियोंके समुदायको 'वृन्द' कहते हैं और 'अकार' सत्ताका वाचक है। उनके समूह-के-समूह सखियाँ हैं; इसलिये वे 'वृन्दा' कही गयी हैं॥ १४॥

उन्हें सदा वृन्दावनमें विनोद प्राप्त होता है; अतः वेद उनको 'वृन्दावनविनोदिनी' कहते हैं॥ १५॥

नखचन्द्रावली वक्त्रचन्द्रोऽस्ति यत्र संततम्।
तेन चन्द्रावली सा च कृष्णेन परिकीर्तिता॥ १६॥
कान्तिरस्ति चन्द्रतुल्या सदा यस्या दिवानिशम्।
सा चन्द्रकान्ता हर्षेण हरिणा परिकीर्तिता॥ १७॥
शरच्चन्द्रप्रभा यस्याश्चाननेऽस्ति दिवानिशम्।
मुनिना कीर्तिता तेन शरच्चन्द्रप्रभानना॥ १८॥
इदं षोडशनामोक्तमर्थव्याख्यानसंयुतम्।
नारायणेन यद्दत्तं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे।
ब्रह्मणा च पुरा दत्तं धर्माय जनकाय मे॥ १९॥
धर्मेण कृपया दत्तं मह्यमादित्यपर्वणि।
पुष्करे च महातीर्थे पुण्याहे देवसंसदि।
राधाप्रभावप्रस्तावे सुप्रसन्नेन चेतसा॥ २०॥

वे सदा मुखचन्द्र तथा नखचन्द्रकी अवली (पंक्ति)-से युक्त हैं; इस कारण श्रीकृष्णने उन्हें 'चन्द्रावली' नाम दिया है॥ १६॥

उनकी कान्ति दिन-रात सदा ही चन्द्रमाके तुल्य बनी रहती है; अतः श्रीहरि हर्षोल्लासके कारण उन्हें 'चन्द्रकान्ता' कहते हैं॥ १७॥

उनके मुखपर दिन-रात शरत्कालके चन्द्रमाकी-सी प्रभा फैली रहती है; इसलिये मुनिमण्डलीने उन्हें 'शरच्चन्द्रप्रभानना' कहा है॥ १८॥

यह अर्थ और व्याख्याओंसहित षोडश-नामावली कही गयी; जिसे नारायणने अपने नाभिकमलपर विराजमान ब्रह्माको दिया था। फिर ब्रह्माजीने पूर्वकालमें मेरे पिता धर्मदेवको इस नामावलीका उपदेश दिया और श्रीधर्मदेवने महातीर्थ पुष्करमें सूर्यग्रहणके पुण्य पर्वपर देवसभाके बीच मुझे कृपापूर्वक इन सोलह नामोंका उपदेश दिया था। श्रीराधाके प्रभावकी प्रस्तावना होनेपर बड़े प्रसन्नचित्तसे उन्होंने इन नामोंकी व्याख्या की थी॥ १९-२०॥

इदं स्तोत्रं महापुण्यं तुभ्यं दत्तं मया मुने।
निन्दकायावैष्णवाय न दातव्यं महामुने॥ २१॥
यावज्जीवमिदं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः।
राधामाधवयोः पादपद्मे भक्तिर्भवेदिह॥ २२॥
अन्ते लभेत्तयोर्दास्यं शश्वत्सहचरो भवेत्।
अणिमादिकसिद्धिं च सम्प्राप्य नित्यविग्रहम्॥ २३॥
व्रतदानोपवासैश्च सर्वैर्नियमपूर्वकैः।
चतुर्णां चैव वेदानां पाठैः सर्वार्थसंयुतैः॥ २४॥
सर्वेषां यज्ञतीर्थानां करणैर्विधिबोधितैः।
प्रदक्षिणेन भूमेश्च कृत्स्नाया एव सप्तधा॥ २५॥

मुने! यह राधाका परम पुण्यमय स्तोत्र है, जिसे मैंने तुमको दिया। महामुने! जो वैष्णव न हो तथा वैष्णवोंका निन्दक हो, उसे इसका उपदेश नहीं देना चाहिये॥ २१॥

जो मनुष्य जीवनभर तीनों संध्याओंके समय इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसकी यहाँ राधा-माधवके चरणकमलोंमें भक्ति होती है॥ २२॥

अन्तमें वह इन दोनोंका दास्यभाव प्राप्त कर लेता है और दिव्य शरीर एवं अणिमा आदि सिद्धिको पाकर सदा इन प्रिया-प्रियतमके साथ विचरता है॥ २३॥

नियमपूर्वक किये गये सम्पूर्ण व्रत, दान और उपवाससे, चारों वेदोंके अर्थसहित पाठसे, समस्त यज्ञों और तीर्थोंके विधिबोधित अनुष्ठान तथा सेवनसे, सम्पूर्ण भूमिकी सात बार की गयी परिक्रमासे,

शरणागतरक्षायामज्ञानां ज्ञानदानतः ।
देवानां वैष्णवानां च दर्शनेनापि यत् फलम् ॥ २६ ॥
तदेव स्तोत्रपाठस्य कलां नार्हति षोडशीम् ।
स्तोत्रस्यास्य प्रभावेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे श्रीनारायणकृतं राधाषोडशनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

३९—श्रीराधास्तोत्रम्

उद्धव उवाच

वन्दे राधापदाम्भोजं ब्रह्मादिसुरवन्दितम् ।
यत्कीर्तिकीर्तनेनैव पुनाति भुवनत्रयम् ॥ १ ॥
नमो गोलोकवासिन्यै राधिकायै नमो नमः ।
शतशृङ्गनिवासिन्यै चन्द्रवत्यै नमो नमः ॥ २ ॥

शरणागतकी रक्षामें, अज्ञानीको ज्ञान देनेसे तथा देवताओं और वैष्णवोंका दर्शन करनेसे भी जो फल प्राप्त होता है, वह इस स्तोत्रपाठकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं है। इस स्तोत्रके प्रभावसे मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ २४—२७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणमें श्रीनारायणकृत राधाषोडशनामस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ ॥

उद्धवजीने कहा—मैं श्रीराधाके उन चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ, जो ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा वन्दित हैं तथा जिनकी कीर्तिके कीर्तनसे ही तीनों भुवन पवित्र हो जाते हैं। गोलोकमें वास करनेवाली राधिकाको बारम्बार नमस्कार। शतशृंगपर निवास करनेवाली

तुलसीवनवासिन्यै वृन्दारण्यै नमो नमः।
रासमण्डलवासिन्यै रासेश्वर्यै नमो नमः॥ ३॥
विरजातीरवासिन्यै वृन्दायै च नमो नमः।
वृन्दावनविलासिन्यै कृष्णायै च नमो नमः॥ ४॥
नमः कृष्णप्रियायै च शान्तायै च नमो नमः।
कृष्णवक्षःस्थितायै च तत्प्रियायै नमो नमः॥ ५॥
नमो वैकुण्ठवासिन्यै महालक्ष्म्यै नमो नमः।
विद्याधिष्ठातृदेव्यै च सरस्वत्यै नमो नमः॥ ६॥
सर्वैश्वर्याधिदेव्यै च कमलायै नमो नमः।
पद्मनाभप्रियायै च पद्मायै च नमो नमः॥ ७॥
महाविष्णोश्च मात्रे च पराद्यायै नमो नमः।
नमः सिन्धुसुतायै च मर्त्यलक्ष्म्यै नमो नमः॥ ८॥

चन्द्रवर्तीको नमस्कार-नमस्कार। तुलसीवन तथा वृन्दावनमें बसनेवालीको नमस्कार-नमस्कार। रासमण्डलवासिनी रासेश्वरीको नमस्कार-नमस्कार। विरजाके तटपर वास करनेवाली वृन्दाको नमस्कार-नमस्कार। वृन्दावनविलासिनी कृष्णाको नमस्कार-नमस्कार॥ १—४॥

कृष्णप्रियाको नमस्कार। शान्ताको पुनः-पुनः नमस्कार। कृष्णके वक्षःस्थलपर स्थित रहनेवाली कृष्णप्रियाको नमस्कार-नमस्कार। वैकुण्ठवासिनीको नमस्कार। महालक्ष्मीको पुनः-पुनः नमस्कार। विद्याकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वतीको नमस्कार-नमस्कार। सम्पूर्ण ऐश्वर्योंकी अधिदेवी कमलाको नमस्कार-नमस्कार। पद्मनाभकी प्रियतमा पद्माको बारम्बार प्रणाम। जो महाविष्णुकी माता और पराद्या हैं, उन्हें पुनः-पुनः नमस्कार। सिन्धुसुताको नमस्कार। मर्त्यलक्ष्मीको नमस्कार-नमस्कार॥ ५—८॥

नारायणप्रियायै च नारायण्यै नमो नमः ।
नमोऽस्तु विष्णुमायायै वैष्णव्यै च नमो नमः ॥ ९ ॥
महामायास्वरूपायै सम्पदायै नमो नमः ।
नमः कल्याणरूपिण्यै शुभायै च नमो नमः ॥ १० ॥
मात्रे चतुर्णां वेदानां सावित्र्यै च नमो नमः ।
नमो दुर्गविनाशिन्यै दुर्गादेव्यै नमो नमः ॥ ११ ॥
तेजःसु सर्वदेवानां पुरा कृतयुगे मुदा ।
अधिष्ठानकृतायै च प्रकृत्यै च नमो नमः ॥ १२ ॥
नमस्त्रिपुरहारिण्यै त्रिपुरायै नमो नमः ।
सुन्दरीषु च रम्यायै निर्गुणायै नमो नमः ॥ १३ ॥
नमो निद्रास्वरूपायै निर्गुणायै नमो नमः ।
नमो दक्षसुतायै च नमः सत्यै नमो नमः ॥ १४ ॥

नारायणकी प्रिया नारायणीको बारम्बार नमस्कार। विष्णुमायाको मेरा नमस्कार प्राप्त हो। वैष्णवीको नमस्कार-नमस्कार। महामाया-स्वरूपा सम्पदाको पुनः-पुनः नमस्कार। कल्याणरूपिणीको नमस्कार। शुभाको बारम्बार नमस्कार। चारों वेदोंकी माता और सावित्रीको पुनः-पुनः नमस्कार। दुर्गविनाशिनी दुर्गादेवीको बारम्बार नमस्कार। पहले सत्ययुगमें जो सम्पूर्ण देवताओंके तेजोंमें अधिष्ठित थीं, उन देवीको तथा प्रकृतिको नमस्कार-नमस्कार। त्रिपुरहारिणीको नमस्कार। त्रिपुराको पुनः-पुनः नमस्कार। सुन्दरियोंमें परम सुन्दरी निर्गुणाको नमस्कार-नमस्कार ॥ ९—१३ ॥

निद्रास्वरूपाको नमस्कार और निर्गुणाको बारम्बार नमस्कार।

नमः शैलसुतायै च पार्वत्यै च नमो नमः।
नमो नमस्तपस्विन्यै ह्युमायै च नमो नमः॥ १५॥
निराहारस्वरूपायै ह्यपर्णायै नमो नमः।
गौरीलोकविलासिन्यै नमो गौर्यै नमो नमः॥ १६॥
नमः कैलासवासिन्यै माहेश्वर्यै नमो नमः।
निद्रायै च दयायै च श्रद्धायै च नमो नमः॥ १७॥
नमो धृत्यै क्षमायै च लज्जायै च नमो नमः।
तृष्णायै क्षुत्स्वरूपायै स्थितिकर्त्र्यै नमो नमः॥ १८॥
नमः संहाररूपिण्यै महामार्यै नमो नमः।
भयायै चाभयायै च मुक्तिदायै नमो नमः॥ १९॥
नमः स्वधायै स्वाहायै शान्त्यै कान्त्यै नमो नमः।
नमस्तुष्ट्यै च पुष्ट्यै च दयायै च नमो नमः॥ २०॥

दक्षसुताको नमस्कार और सत्याको पुनः-पुनः नमस्कार। शैलसुताको नमस्कार और पार्वतीको बार-बार नमस्कार। तपस्विनीको नमस्कार-नमस्कार और उमाको बारम्बार नमस्कार। निराहारस्वरूपा अपर्णाको पुनः-पुनः नमस्कार। गौरीलोकमें विलास करनेवाली गौरीको बारम्बार नमस्कार। कैलासवासिनीको नमस्कार और माहेश्वरीको नमस्कार-नमस्कार। निद्रा, दया और श्रद्धाको पुनः-पुनः नमस्कार। धृति, क्षमा और लज्जाको बारम्बार नमस्कार। तृष्णा, क्षुत्स्वरूपा और स्थितिकर्त्रीको नमस्कार-नमस्कार॥ १४—१८॥

संहाररूपिणीको नमस्कार और महामारीको पुनः-पुनः नमस्कार। भया, अभया और मुक्तिदाको नमस्कार-नमस्कार। स्वधा, स्वाहा, शान्ति और कान्तिको बारम्बार नमस्कार। तुष्टि, पुष्टि और दयाको पुनः-पुनः नमस्कार।

नमो निद्रास्वरूपायै श्रद्धायै च नमो नमः।
क्षुत्पिपासास्वरूपायै लज्जायै च नमो नमः॥ २१॥
नमो धृत्यै क्षमायै च चेतनायै नमो नमः।
सर्वशक्तिस्वरूपिण्यै सर्वमात्रे नमो नमः॥ २२॥
अग्नौ दाहस्वरूपायै भद्रायै च नमो नमः।
शोभायै पूर्णचन्द्रे च शरत्पद्मे नमो नमः॥ २३॥
नास्ति भेदो यथा देवि दुग्धधावल्ययोः सदा।
यथैव गन्धभूम्योश्च यथैव जलशैत्ययोः॥ २४॥
यथैव शब्दनभसोर्ज्योतिःसूर्यकयोर्यथा।
लोके वेदे पुराणे च राधामाधवयोस्तथा॥ २५॥
चेतनं कुरु कल्याणि देहि मामुत्तरं सति।
इत्युक्त्वा चोद्धवस्तत्र प्रणनाम पुनः पुनः॥ २६॥

निद्रास्वरूपाको नमस्कार और श्रद्धाको नमस्कार-नमस्कार। क्षुत्पिपासा-स्वरूपा और लज्जाको बारम्बार नमस्कार। धृति, चेतना और क्षमाको बारम्बार नमस्कार। जो सबकी माता तथा सर्वशक्तिस्वरूपा हैं, उन्हें नमस्कार-नमस्कार। अग्निमें दाहिका-शक्तिके रूपमें विद्यमान रहनेवाली देवी और भद्राको पुनः-पुनः नमस्कार। जो पूर्णिमाके चन्द्रमामें और शरत्कालीन कमलमें शोभारूपसे वर्तमान रहती हैं, उन शोभाको नमस्कार-नमस्कार॥ २१—२३॥

देवि! जैसे दूध और उसकी धवलतामें, गन्ध और भूमिमें, जल और शीतलतामें, शब्द और आकाशमें तथा सूर्य और प्रकाशमें कभी भेद नहीं है, वैसे ही लोक, वेद और पुराणोंमें—कहीं भी राधा और माधवमें भेद नहीं है। अतः कल्याणि! चेत करो। सति! मुझे उत्तर दो। यों कहकर उद्धव वहाँ उनके चरणोंमें पुनः-पुनः प्रणिपात करने लगे॥ २४—२६॥

इत्युद्धवकृतं स्तोत्रं यः पठेद् भक्तिपूर्वकम्।
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते हरिमन्दिरम्॥ २७॥
न भवेद् बन्धुविच्छेदो रोगः शोकः सुदारुणः।
प्रोषिता स्त्री लभेत् कान्तं भार्याभेदी लभेत् प्रियाम्॥ २८॥
अपुत्रो लभते पुत्रान् निर्धनो लभते धनम्।
निर्भूमिर्लभते भूमिं प्रजाहीनो लभेत् प्रजाम्॥ २९॥
रोगाद् विमुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः॥ ३०॥
अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः॥ ३१॥

॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे उद्धवकृतं श्रीराधास्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस उद्धवकृत स्तोत्रका पाठ करता है, वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें वैकुण्ठमें जाता है। उसे बन्धुवियोग तथा अत्यन्त भयंकर रोग और शोक नहीं होते। जिस स्त्रीका पति परदेश गया होता है, वह अपने पतिसे मिल जाती है और भार्यावियोगी अपनी पत्नीको पा जाता है। पुत्रहीनको पुत्र मिल जाते हैं, निर्धनको धन प्राप्त हो जाता है, भूमिहीनको भूमिकी प्राप्ति हो जाती है, प्रजाहीन प्रजाको पा लेता है, रोगी रोगसे विमुक्त हो जाता है, बँधा हुआ बन्धनसे छूट जाता है, भयभीत मनुष्य भयसे मुक्त हो जाता है, आपत्तिग्रस्त आपदसे छुटकारा पा जाता है और मलिन कीर्तिवाला उत्तम यशस्वी तथा मूर्ख पण्डित हो जाता है॥ २७—३१॥

॥ इस प्रकार श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणमें उद्धवकृत श्रीराधास्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

४०—श्रीराधाष्टकम्

नमस्ते श्रियै राधिकायै परायै
नमस्ते नमस्ते मुकुन्दप्रियायै।
सदानन्दरूपे प्रसीद त्वमन्तः-
प्रकाशे स्फुरन्ती मुकुन्देन सार्धम्॥ १॥
स्ववासोऽपहारं यशोदासुतं वा
स्वदध्यादिचौरं समाराधयन्तीम्।
स्वदाम्नोदरं या बबन्धाशु नीव्या
प्रपद्ये नु दामोदरप्रेयसीं ताम्॥ २॥

श्रीराधिके! तुम्हीं श्री (लक्ष्मी) हो, तुम्हें नमस्कार है, तुम्हीं पराशक्ति राधिका हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम मुकुन्दकी प्रियतमा हो, तुम्हें नमस्कार है। सदानन्दस्वरूपे देवि! तुम मेरे अन्तःकरणके प्रकाशमें श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके साथ सुशोभित होती हुई मुझपर प्रसन्न होओ॥ १॥

जो अपने वस्त्रका अपहरण करनेवाले अथवा अपने दूध-दही, माखन आदि चुरानेवाले यशोदानन्दन श्रीकृष्णकी आराधना करती हैं, जिन्होंने अपनी नीवीके बन्धनसे श्रीकृष्णके उदरको शीघ्र ही बाँध लिया था, जिसके कारण उनका नाम 'दामोदर' हो गया, उन दामोदरकी प्रियतमा श्रीराधा-रानीकी मैं निश्चय ही शरण लेता हूँ॥ २॥

दुराराध्यमाराध्य कृष्णं वशे त्वं
महाप्रेमपूरेण राधाभिधाऽभूः।
स्वयं नामकृत्या हरिप्रेम यच्छ
प्रपन्नाय मे कृष्णरूपे समक्षम्॥ ३॥
मुकुन्दस्त्वया प्रेमदोरेण बद्धः
पतङ्गो यथा त्वामनुभ्राम्यमाणः।
उपक्रीडयन् हार्दमेवानुगच्छन्
कृपा वर्तते कारयातो मयेष्टिम्॥ ४॥
व्रजन्तीं स्ववृन्दावने नित्यकालं
मुकुन्देन साकं विधायाङ्कमालम्।

श्रीराधे! जिनकी आराधना कठिन है, उन श्रीकृष्णकी भी आराधना करके तुमने अपने महान् प्रेमसिन्धुकी बाढ़से उन्हें वशमें कर लिया। श्रीकृष्णकी आराधनाके ही कारण तुम 'राधा' नामसे विख्यात हुई। श्रीकृष्णस्वरूपे! अपना यह नामकरण स्वयं तुमने किया है, इससे अपने सम्मुख आये हुए मुझ शरणागतको श्रीहरिका प्रेम प्रदान करो॥ ३॥

तुम्हारी प्रेमडोरमें बँधे हुए भगवान् श्रीकृष्ण पतंगकी भाँति सदा तुम्हारे आस-पास ही चक्कर लगाते रहते हैं, हार्दिक प्रेमका अनुसरण करके तुम्हारे पास ही रहते और क्रीडा करते हैं। देवि! तुम्हारी कृपा सबपर है, अतः मेरे द्वारा अपनी आराधना (सेवा) करवाओ॥ ४॥

जो प्रतिदिन नियत समयपर श्रीश्यामसुन्दरके साथ उन्हें अपने

सदा मोक्ष्यमाणानुकम्पाकटाक्षैः
श्रियं चिन्तयेत् सच्चिदानन्दरूपाम् ॥ ५ ॥
मुकुन्दानुरागेण रोमाञ्चिताङ्गी-
महं व्याप्यमानां तनुस्वेदबिन्दुम् ।
महाहार्दवृष्ट्या कृपापाङ्गदृष्ट्या
समालोकयन्तीं कदा त्वां विचक्षे ॥ ६ ॥
पदाङ्कावलोके महालालसौघं
मुकुन्दः करोति स्वयं ध्येयपादः ।
पदं राधिके ते सदा दर्शयान्त-
र्हृदीतो नमन्तं किरद्रोचिषं माम् ॥ ७ ॥

अंककी माला अर्पित करके अपनी लीलाभूमि—वृन्दावनमें विहार करती हैं, भक्तजनोंपर प्रयुक्त होनेवाले कृपा-कटाक्षोंसे सुशोभित उन सच्चिदानन्दस्वरूपा श्रीलाड़िलीका सदा चिन्तन करे ॥ ५ ॥

श्रीराधे! तुम्हारे मन-प्राणोंमें आनन्दकन्द श्रीकृष्णका प्रगाढ़ अनुराग व्याप्त है, अतएव तुम्हारे श्रीअंग सदा रोमांचसे विभूषित हैं और अंग-अंग सूक्ष्म स्वेदबिन्दुओंसे सुशोभित होता है। तुम अपनी कृपा-कटाक्षसे परिपूर्ण दृष्टिद्वारा महान् प्रेमकी वर्षा करती हुई मेरी ओर देख रही हो, इस अवस्थामें मुझे कब तुम्हारा दर्शन होगा? ॥ ६ ॥

श्रीराधिके! यद्यपि श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण स्वयं ही ऐसे हैं कि उनके चारुचरणोंका चिन्तन किया जाय, तथापि वे तुम्हारे चरणचिह्नोंके अवलोकनकी बड़ी लालसा रखते हैं। देवि! मैं नमस्कार करता हूँ। इधर मेरे अन्तःकरणके हृदय-देशमें ज्योतिपुञ्ज बिखेरते हुए अपने चिन्तनीय चरणारविन्दका मुझे दर्शन कराओ ॥ ७ ॥

सदा राधिकानाम जिह्वाग्रतः स्यात्
सदा राधिका रूपमक्ष्यग्र आस्ताम् ।
श्रुतौ राधिकाकीर्तिरन्तःस्वभावे
गुणा राधिकायाः श्रिया एतदीहे ॥ ८ ॥

इदं त्वष्टकं राधिकायाः प्रियायाः
पठेयुः सदैवं हि दामोदरस्य ।
सुतिष्ठन्ति वृन्दावने कृष्णधाम्नि
सखीमूर्तयो युग्मसेवानुकूलाः ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्रविरचितं श्रीराधाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

मेरी जिह्वाके अग्रभागपर सदा श्रीराधिकाका नाम विराजमान रहे। मेरे नेत्रोंके समक्ष सदा श्रीराधाका ही रूप प्रकाशित हो। कानोंमें श्रीराधिकाकी कीर्ति-कथा गूँजती रहे और अन्तर्हृदयमें लक्ष्मी-स्वरूपा श्रीराधाके ही असंख्य गुणगणोंका चिन्तन हो, यही मेरी शुभ कामना है ॥ ८ ॥

दामोदरप्रिया श्रीराधाकी स्तुतिसे सम्बन्ध रखनेवाले इन आठ श्लोकोंका जो लोग सदा इसी रूपमें पाठ करते हैं, वे श्रीकृष्णधाम वृन्दावनमें युगल सरकारकी सेवाके अनुकूल सखी-शरीर पाकर सुखसे रहते हैं ॥ ९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्रविरचित श्रीराधाष्टक सम्पूर्ण हुआ ॥

गायत्रीस्तोत्रम्

४१—गायत्रीस्तुतिः

महेश्वर उवाच

जयस्व देवि गायत्रि महामाये महाप्रभे।
महादेवि महाभागे महासत्त्वे महोत्सवे॥ १॥
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गि दिव्यस्रग्दामभूषिते।
वेदमातर्नमस्तुभ्यं त्र्यक्षरस्थे महेश्वरि॥ २॥
त्रिलोकस्थे त्रितत्त्वस्थे त्रिवह्निस्थे त्रिशूलिनि।
त्रिनेत्रे भीमवक्त्रे च भीमनेत्रे भयानके॥ ३॥
कमलासनजे देवि सरस्वति नमोऽस्तु ते।
नमः पङ्कजपत्राक्षि महामायेऽमृतस्रवे॥ ४॥

भगवान् महेश्वर बोले—महामाये! महाप्रभे! गायत्रीदेवि! आपकी जय हो! महाभागे! आपके सौभाग्य, बल, आनन्द—सभी असीम हैं। दिव्य गन्ध एवं अनुलेपन आपके श्रीअंगोंकी शोभा बढ़ाते हैं। परमानन्दमयी देवि! दिव्य मालाएँ एवं गन्ध आपके श्रीविग्रहकी छवि बढ़ाती हैं। महेश्वरि! आप वेदोंकी माता हैं। आप ही वर्णोंकी मातृका हैं। आप तीनों लोकोंमें व्याप्त हैं। तीनों अग्नियोंमें जो शक्ति है, वह आपका ही तेज है। त्रिशूल धारण करनेवाली देवि! आपको मेरा नमस्कार है। देवि! आप त्रिनेत्रा, भीमवक्त्रा, भीमनेत्रा और भयानका आदि अर्थानुरूप नामोंसे व्यवहृत होती हैं। आप ही गायत्री और सरस्वती हैं। आपके लिये हमारा नमस्कार है। अम्बिके! आपकी आँखें कमलके समान हैं। आप महामाया हैं। आपसे अमृतकी वृष्टि होती रहती है॥ १—४॥

सर्वगे सर्वभूतेशि स्वाहाकारे स्वधेऽम्बिके।
सम्पूर्णे पूर्णचन्द्राभे भास्वराङ्गे भवोद्भवे ॥ ५ ॥
महाविद्ये महावेद्ये महादैत्यविनाशिनि।
महाबुद्ध्युद्भवे देवि वीतशोके किरातिनि ॥ ६ ॥
त्वं नीतिस्त्वं महाभागे त्वं गीस्त्वं गौस्त्वमक्षरम्।
त्वं धीस्त्वं श्रीस्त्वमोङ्कारस्तत्त्वे चापि परिस्थिता।
सर्वसत्त्वहिते देवि नमस्ते परमेश्वरि ॥ ७ ॥
इत्येवं संस्तुता देवी भवेन परमेष्ठिना।
देवैरपि जयेत्युच्चैरित्युक्ता परमेश्वरी ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीवराहमहापुराणे महेश्वरकृता गायत्रीस्तुतिः सम्पूर्णा ॥

सर्वगे! आप सम्पूर्ण प्राणियोंकी अधिष्ठात्री हैं। स्वाहा और स्वधा आपकी ही प्रतिकृतियाँ हैं; अतः आपको मेरा नमस्कार है। महान् दैत्योंका दलन करनेवाली देवि! आप सभी प्रकारसे परिपूर्ण हैं। आपके मुखकी आभा पूर्णचन्द्रके समान है। आपके शरीरसे महान् तेज छिटक रहा है। आपसे ही यह सारा विश्व प्रकट होता है। आप महाविद्या और महावेद्या हैं। आनन्दमयी देवि! विशिष्ट बुद्धिका आपसे ही उदय होता है। आप समयानुसार लघु एवं बृहत् शरीर भी धारण कर लेती हैं। महामाये! आप नीति, सरस्वती, पृथ्वी एवं अक्षरस्वरूपा हैं। देवि! आप श्री, धी तथा ॐकारस्वरूपा हैं। परमेश्वरि! तत्त्वमें विराजमान होकर आप अखिल प्राणियोंका हित करती हैं। आपको मेरा बार-बार नमस्कार है ॥ ५—७ ॥

इस प्रकार परम शक्तिशाली भगवान् शंकरने उन देवीकी स्तुति की, और देवतालोग भी कहे उच्चस्वरसे उन परमेश्वरीकी जयध्वनि करने लगे ॥ ८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीवराहमहापुराणमें महेश्वरकृत गायत्रीस्तुति सम्पूर्ण हुई ॥

अन्नपूर्णास्तोत्रम्

४२—श्रीअन्नपूर्णास्तोत्रम्

नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी
निर्धूताखिलघोरपावनकरी प्रत्यक्षमाहेश्वरी।
प्रालेयाचलवंशपावनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥ १॥
नानारत्नविचित्रभूषणकरी हेमाम्बराडम्बरी
मुक्ताहारविलम्बमानविलसद्वक्षोजकुम्भान्तरी।
काश्मीरागरुवासिताङ्गरुचिरे काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥ २॥

आप नित्य आनन्द प्रदान करनेवाली हैं, वर तथा अभय देनेवाली हैं, सौन्दर्यरूपी रत्नोंकी खान हैं, भक्तोंके सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करके उन्हें पवित्र कर देनेवाली हैं, साक्षात् माहेश्वरीके रूपमें प्रतिष्ठित हैं, [पार्वतीके रूपमें जन्म लेकर] आपने हिमालयके वंशको पावन कर दिया है, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी (स्वामिनी) हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं, आप भगवती अन्नपूर्णा हैं; मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ १॥

आप अनेकविध रत्नोंके विचित्र आभूषण धारण करनेवाली हैं, आप स्वर्णजटित वस्त्रोंमें शोभा पानेवाली हैं, आपके वक्षःस्थलका मध्यभाग मुक्ताहारसे सुशोभित हो रहा है, आपके श्रीअंग केशर और अगरुसे सुवासित हैं, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं, आप भगवती अन्नपूर्णा हैं; मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ २॥

योगानन्दकरी रिपुक्षयकरी धर्मार्थनिष्ठाकरी
चन्द्रार्कानलभासमानलहरी त्रैलोक्यरक्षाकरी।
सर्वैश्वर्यसमस्तवाञ्छितकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥ ३॥
कैलासाचलकन्दरालयकरी गौरी उमा शङ्करी
कौमारी निगमार्थगोचरकरी ओङ्कारबीजाक्षरी।
मोक्षद्वारकपाटपाटनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥ ४॥

आप [योगिजनोंको] योगका आनन्द प्रदान करती हैं, शत्रुओंका नाश करती हैं, धर्म और अर्थके लिये लोगोंमें निष्ठा उत्पन्न करती हैं; सूर्य, चन्द्र तथा अग्निकी प्रभा-तरंगोंके समान कान्तिवाली हैं, तीनों लोकोंकी रक्षा करती हैं, अपने भक्तोंको सभी प्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करती हैं; उनके समस्त मनोरथ पूर्ण करती हैं, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं, आप भगवती अन्नपूर्णा हैं; मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ ३॥

आपने कैलासपर्वतकी गुफाको अपना निवासस्थल बना रखा है, आप गौरी, उमा, शंकरी तथा कौमारीके रूपमें प्रतिष्ठित हैं, आप वेदार्थ तत्त्वोंका अवबोध करानेवाली हैं, आप 'ओंकार' बीजाक्षरस्वरूपिणी हैं, आप मोक्षमार्गके कपाटका उद्घाटन करनेवाली हैं, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं, आप भगवती अन्नपूर्णा हैं; मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ ४॥

दृश्यादृश्यविभूतिवाहनकरी ब्रह्माण्डभाण्डोदरी
लीलानाटकसूत्रभेदनकरी विज्ञानदीपाङ्कुरी।
श्रीविश्वेशमनःप्रसादनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥ ५॥
उर्वीसर्वजनेश्वरी भगवती मातान्नपूर्णेश्वरी
वेणीनीलसमानकुन्तलहरी नित्यान्नदानेश्वरी।
सर्वानन्दकरी सदा शुभकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥ ६॥

आप दृश्य तथा अदृश्यरूप अनेकविध ऐश्वर्यरूपी वाहनोंपर आरूढ़ होनेवाली हैं, आप अनन्त ब्रह्माण्डको अपने उदररूपी पात्रमें धारण करनेवाली हैं, माया-प्रपंचके (कारणभूत अज्ञान) सूत्रका भेदन करनेवाली हैं, आप विज्ञान (अपरोक्षानुभूति)-रूपी दीपककी शिखा हैं, आप भगवान् विश्वनाथके मनको प्रसन्न रखनेवाली हैं, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं, आप भगवती अन्नपूर्णा हैं; मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ ५॥

आप पृथ्वीतलपर स्थित सभी प्राणियोंकी ईश्वरी (स्वामिनी) हैं, आप ऐश्वर्यशालिनी हैं, सभी जीवोंमें मातृभावसे विराजती हैं, अन्नसे भण्डारको परिपूर्ण रखनेवाली देवी हैं, आप नील वर्णकी वेणीके समान लहराते केश-पाशवाली हैं, आप निरन्तर अन्न-दानमें लगी रहती हैं, समस्त प्राणियोंको आनन्द प्रदान करनेवाली हैं, सर्वदा [भक्तजनोंका] मंगल करनेवाली हैं, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं, आप भगवती अन्नपूर्णा हैं; मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ ६॥

आदिक्षान्तसमस्तवर्णनकरी शम्भोस्त्रिभावाकरी
काश्मीरात्रिजलेश्वरी त्रिलहरी नित्याङ्कुरा शर्वरी।
कामाकाङ्क्षकरी जनोदयकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी ॥ ७ ॥

देवी सर्वविचित्ररत्नरचिता दाक्षायणी सुन्दरी
वामं स्वादुपयोधरप्रियकरी सौभाग्यमाहेश्वरी।
भक्ताभीष्टकरी सदा शुभकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी ॥ ८ ॥

आप 'अ' से 'क्ष' पर्यन्त समस्त वर्णमालासे व्याप्त हैं, आप भगवान् शिवके तीनों भावों (सत्त्व, रज, तम)-को प्रादुर्भूत करनेवाली हैं, आप केसरके समान आभावाली हैं, आप स्वर्गगंगा, पातालगंगा तथा भागीरथी—इन तीन जल-राशियोंकी स्वामिनी हैं, आप गंगा, यमुना तथा सरस्वती—इन तीनों नदियोंकी लहरोंके रूपमें विद्यमान हैं, आप विभिन्न रूपोंमें नित्य अभिव्यक्त होनेवाली हैं, आप रात्रिस्वरूपा हैं, आप अभिलाषी भक्त जनोंकी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली हैं, लोगोंका अभ्युदय करनेवाली हैं, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं, आप भगवती अन्नपूर्णा हैं; मुझे भिक्षा प्रदान करें ॥ ७ ॥

आप सभी प्रकारके अद्भुत रत्नाभूषणोंसे सजी हुई देवीके रूपमें शोभा पाती हैं, आप दक्षकी सुन्दर पुत्री हैं, आप माताके रूपमें अपने वाम तथा स्वादमय पयोधरसे [भक्त शिशुओंका] प्रिय सम्पादन करनेवाली हैं, आप सौभाग्यकी माहेश्वरी हैं, आप भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाली और सदा उनका कल्याण करनेवाली हैं, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं, आप भगवती अन्नपूर्णा हैं; मुझे भिक्षा प्रदान करें ॥ ८ ॥

चन्द्रार्कानलकोटिकोटिसदृशा चन्द्रांशुबिम्बाधरी
  चन्द्रार्काग्निसमानकुन्तलधरी चन्द्रार्कवर्णेश्वरी।
मालापुस्तकपाशसाङ्कुशधरी काशीपुराधीश्वरी
  भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥ ९ ॥
क्षत्रत्राणकरी महाऽभयकरी माता कृपासागरी
  साक्षान्मोक्षकरी सदा शिवकरी विश्वेश्वरश्रीधरी।
दक्षाक्रन्दकरी निरामयकरी काशीपुराधीश्वरी
  भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी॥ १० ॥
अन्नपूर्णे सदापूर्णे शङ्करप्राणवल्लभे।
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वति॥ ११ ॥

आप कोटि-कोटि चन्द्र-सूर्य-अग्निके समान जाज्वल्यमान प्रतीत होती हैं, आप चन्द्रकिरणोंके समान [शीतल] तथा बिम्बाफलके समान रक्त-वर्णके अधरोष्ठवाली हैं, चन्द्र-सूर्य तथा अग्निके समान प्रकाशमान केश धारण करनेवाली हैं, आप चन्द्रमा तथा सूर्यके समान देदीप्यमान वर्णवाली ईश्वरी हैं, आपने [अपने हाथोंमें] माला, पुस्तक, पाश तथा अंकुश धारण कर रखा है, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं; आप भगवती अन्नपूर्णा हैं, मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ ९ ॥

आप घोर संकटकी स्थितिमें अपने भक्तोंकी रक्षा करती हैं, आप भक्तोंको महान् अभय प्रदान करती हैं, आप मातृस्वरूपा हैं, आप कृपासमुद्र हैं, आप साक्षात् मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं, आप सदा कल्याण करनेवाली हैं, आप भगवान् विश्वनाथका ऐश्वर्य धारण करनेवाली हैं, [यज्ञका विध्वंस करके] आप दक्षको रुलानेवाली हैं, आप रोग-दोषोंसे मुक्त करनेवाली हैं, आप काशीपुरीकी अधीश्वरी हैं, अपनी कृपाका आश्रय देनेवाली हैं, आप [समस्त प्राणियोंकी] माता हैं, आप भगवती अन्नपूर्णा हैं, मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ १० ॥

सभी वैभवोंसे सदा परिपूर्ण रहनेवाली तथा भगवान् शंकरकी प्राणप्रिया हे अन्नपूर्णे! हे पार्वति! ज्ञान तथा वैराग्यकी सिद्धिके लिये मुझे भिक्षा प्रदान करें॥ ११ ॥

माता च पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः।
बान्धवाः शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्॥ १२॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीअन्नपूर्णास्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

४३—श्रीअन्नपूर्णा-माहात्म्य

लालची ललात, बिललात द्वार-द्वार दीन,
बदन मलीन, मन मिटै ना बिसूरना।
ताकत सराध, कै बिबाह, कै उछाह कछू,
डोलै लोल बूझत सबद ढोल-तूरना॥
प्यासेहूँ न पावै बारि, भूखें न चनक चारि,
चाहत अहारन पहार, दारि घूर ना।
सोकको अगार, दुखभार भरो तौलौं जन
जौलौं देबी द्रवै न भवानी अन्नपूरना॥

(कवितावली)

भगवती पार्वती मेरी माता हैं, भगवान् महेश्वर मेरे पिता हैं, सभी शिवभक्त मेरे बन्धु-बान्धव हैं और तीनों लोक मेरा अपना ही देश है [यह भावना सर्वदा मेरे मनमें बनी रहे]।

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित श्रीअन्नपूर्णास्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

जबतक देवी अन्नपूर्णा कृपा नहीं करतीं, तभीतक मनुष्य लालची होकर (टुकड़े-टुकड़ेके लिये) लालायित होता है और दीन तथा मलिनमुख हो द्वार-द्वारपर बिलबिलाता रहता है, परंतु उसके मनकी चिन्ता दूर नहीं होती। कहीं श्राद्ध, विवाह अथवा कोई उत्सव तो नहीं, इस बातकी टोहमें रहता है; चंचल होकर इधर-उधर घूमता है और यदि कहीं ढोल या तुरहीका शब्द होता है तो पूछता है [कि यहाँ कोई उत्सव तो नहीं है?] प्यास लगनेपर उसे जल नहीं मिलता, भूख होनेपर चार चने भी नहीं मिलते। पहाड़के समान भोजनकी इच्छा होती है, परंतु घूरेपर पड़ी दाल भी नहीं मिलती। इस प्रकार वह शोकका आश्रय-स्थान और दुःखके भारसे दबा रहता है।

श्रीविन्ध्येश्वरीस्तोत्रम्

८४—श्रीविन्ध्येश्वरीस्तोत्रम्

निशुम्भशुम्भमर्दिनीं प्रचण्डमुण्डखण्डिनीम्।
वने रणे प्रकाशिनीं भजामि विन्ध्यवासिनीम्॥ १॥
त्रिशूलरत्नधारिणीं धराविघातहारिणीम्।
गृहे गृहे निवासिनीं भजामि विन्ध्यवासिनीम्॥ २॥
दरिद्रदु:खहारिणीं सतां विभूतिकारिणीम्।
वियोगशोकहारिणीं भजामि विन्ध्यवासिनीम्॥ ३॥
लसत्सुलोललोचनां लतां सदावरप्रदाम्।
कपालशूलधारिणीं भजामि विन्ध्यवासिनीम्॥ ४॥

शुम्भ तथा निशुम्भका संहार करनेवाली, चण्ड तथा मुण्डका विनाश करनेवाली, वनमें तथा युद्धस्थलमें पराक्रम प्रदर्शित करनेवाली भगवती विन्ध्यवासिनीकी मैं आराधना करता हूँ॥ १॥

त्रिशूल तथा रत्न धारण करनेवाली, पृथ्वीका संकट हरनेवाली और घर-घरमें निवास करनेवाली भगवती विन्ध्यवासिनीकी मैं आराधना करता हूँ॥ २॥

दरिद्रजनोंका दु:ख दूर करनेवाली, सज्जनोंका कल्याण करनेवाली और वियोगजनित शोकका हरण करनेवाली भगवती विन्ध्यवासिनीकी मैं आराधना करता हूँ॥ ३॥

सुन्दर तथा चंचल नेत्रोंसे सुशोभित होनेवाली, सुकुमार नारी-विग्रहसे शोभा पानेवाली, सदा वर प्रदान करनेवाली और कपाल तथा शूल धारण करनेवाली भगवती विन्ध्यवासिनीकी मैं आराधना करता हूँ॥ ४॥

करे मुदा गदाधरां शिवां शिवप्रदायिनीम्।
वरावराननां शुभां भजामि विन्ध्यवासिनीम्॥ ५॥
ऋषीन्द्रजामिनप्रदां त्रिधास्यरूपधारिणीम्।
जले स्थले निवासिनीं भजामि विन्ध्यवासिनीम्॥ ६॥
विशिष्टसृष्टिकारिणीं विशालरूपधारिणीम्।
महोदरां विशालिनीं भजामि विन्ध्यवासिनीम्॥ ७॥
पुरन्दरादिसेवितां मुरादिवंशखण्डिनीम्।
विशुद्धबुद्धिकारिणीं भजामि विन्ध्यवासिनीम्॥ ८॥

॥ इति श्रीविन्ध्येश्वरीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

प्रसन्नतापूर्वक हाथमें गदा धारण करनेवाली, कल्याणमयी, सर्वविध मंगल प्रदान करनेवाली तथा सुरूप-कुरूप सभी रूपोंमें व्याप्त परम शुभस्वरूपा भगवती विन्ध्यवासिनीकी मैं आराधना करता हूँ॥ ५॥

ऋषिश्रेष्ठके यहाँ पुत्रीरूपसे प्रकट होनेवाली, ज्ञानालोक प्रदान करनेवाली; महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वतीरूपसे तीन स्वरूपोंको धारण करनेवाली और जल तथा स्थलमें निवास करनेवाली भगवती विन्ध्यवासिनीकी मैं आराधना करता हूँ॥ ६॥

विशिष्टताकी सृष्टि करनेवाली, विशाल स्वरूप धारण करनेवाली, महान् उदरसे सम्पन्न तथा व्यापक विग्रहवाली भगवती विन्ध्यवासिनीकी मैं आराधना करता हूँ॥ ७॥

इन्द्र आदि देवताओंसे सेवित, मुर आदि राक्षसोंके वंशका नाश करनेवाली तथा अत्यन्त निर्मल बुद्धि प्रदान करनेवाली भगवती विन्ध्यवासिनीकी मैं आराधना करता हूँ॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीविन्ध्येश्वरीस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ ॥

काशीस्तोत्राणि

४५—काशीपञ्चकम्

मनोनिवृत्तिः परमोपशान्तिः
सा तीर्थवर्या मणिकर्णिका च।
ज्ञानप्रवाहा विमलादिगङ्गा
सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा॥ १॥
यस्यामिदं कल्पितमिन्द्रजालं
चराचरं भाति मनोविलासम्।
सच्चित्सुखैका परमात्मरूपा
सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा॥ २॥
कोशेषु पञ्चस्वधिराजमाना
बुद्धिर्भवानी प्रतिदेहगेहम्।

जहाँ मनोवृत्ति आत्यन्तिक रूपसे निरुद्ध होकर परम शान्तिका साधन बन जाती है, वह मणिकर्णिका समस्त तीर्थोंमें श्रेष्ठ [काशीका हृदय] है। [काशीमाता कहती हैं—] जहाँ विमल ज्ञानगंगाका आदिकालसे प्रवाह चला आ रहा है, वह आत्मबोधरूपा काशी मैं हूँ॥ १॥

जिस (विज्ञानमयी काशी)-में यह चराचर सृष्टिरूप प्रपंच कल्पित इन्द्रजाल तथा मनोराज्यके समान [मिथ्यारूप] प्रतीत होता है, अद्वितीय सत्-चित्-आनन्दस्वरूपिणी तथा परमात्मरूपा वह आत्मबोधरूपा काशी मैं हूँ॥ २॥

पाँचों कोशोंमें[1] अधिष्ठानरूपसे विराजमान तथा जहाँ प्रत्येक देहमें

---

[1] अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय—इन पाँच कोशोंमें।

साक्षी शिवः सर्वगतोऽन्तरात्मा
सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा ॥ ३ ॥
काश्यां हि काशते काशी काशी सर्वप्रकाशिका।
सा काशी विदिता येन तेन प्राप्ता हि काशिका ॥ ४ ॥
काशीक्षेत्रं शरीरं त्रिभुवनजननी व्यापिनी ज्ञानगङ्गा
भक्तिः श्रद्धा गयेयं निजगुरुचरणध्यानयोगः प्रयागः।
विश्वेशोऽयं तुरीयः सकलजनमनःसाक्षिभूतोऽन्तरात्मा
देहे सर्वं मदीये यदि वसति पुनस्तीर्थमन्यत्किमस्ति ॥ ५ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं काशीपञ्चकं सम्पूर्णम् ॥

भवानी बुद्धिरूपसे प्रतिष्ठित हैं और भगवान् शिव सबके साक्षीरूपसे सभी प्राणियोंके हृदयस्थलमें विराजमान रहते हैं, वह आत्मबोधरूपा काशी मैं हूँ ॥ ३ ॥

काशीमें ही सब कुछ प्रकाशित होता है, काशी ही सबको प्रकाशित करनेवाली है, उस आत्मप्रकाशस्वरूपा काशीको जिसने जान लिया, उसने ही सचमुच काशीको प्राप्त किया ॥ ४ ॥

मेरा शरीर ही काशीक्षेत्र है, मेरा चैतन्य (ज्ञान) त्रिभुवनजननी सर्वव्यापिनी गंगा है। मेरी यह भक्ति और श्रद्धा गयातीर्थ है तथा गुरुचरणोंमें ध्यान लगाना ही प्रयागराज है। मेरी आत्मा ही भगवान् विश्वनाथ हैं, जो सभी प्राणियोंके अन्तरात्मा तथा जिनके साक्षी हैं। जब मेरे देहमें ही इन सबका निवास है, तब अन्य तीर्थोंसे क्या प्रयोजन?

॥ इस प्रकार श्रीमद् शंकराचार्यविरचित काशीपंचक सम्पूर्ण हुआ ॥

४६—काशी-स्तुति

सेइअ सहित सनेह देह भरि, कामधेनु कलि कासी।
समनि सोक-संताप-पाप-रुज, सकल-सुमंगल-रासी॥ १॥
मरजादा चहुँओर चरनबर, सेवत सुरपुर-बासी।
तीरथ सब सुभ अंग रोम सिवलिंग अमित अबिनासी॥ २॥
अंतरऐन ऐन भल, थन फल, बच्छ बेद-बिस्वासी।
गलकंबल बरुना बिभाति जनु, लूम लसति, सरिताऽसी॥ ३॥
दंडपानि भैरव बिषान, मलरुचि-खलगन-भयदा-सी।
लोलदिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट घंटा-सी॥ ४॥

इस कलियुगमें काशीरूपी कामधेनुका प्रेमसहित जीवनभर सेवन करना चाहिये। यह शोक, सन्ताप, पाप और रोगका नाश करनेवाली तथा सब प्रकारके कल्याणोंकी खानि है॥ १॥

काशीके चारों ओरकी सीमा इस कामधेनुके सुन्दर चरण हैं। स्वर्गवासी देवता इसके चरणोंकी सेवा करते हैं। यहाँके सब तीर्थस्थान इसके शुभ अंग हैं और नाशरहित अगणित शिवलिंग इसके रोम हैं॥ २॥

अन्तर्गृही (काशीका मध्यभाग) इस कामधेनुका ऐन* (गादी) है। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—ये चारों फल इसके चार थन हैं; वेद-शास्त्रोंपर विश्वास रखनेवाले आस्तिक लोग इसके बछड़े हैं—विश्वासी पुरुषोंको ही इसमें निवास करनेसे मुक्तिरूपी अमृतमय दूध मिलता है; सुन्दर वरुणा नदी इसकी गल-कंबलके समान शोभा बढ़ा रही है और असी नामक नदी पूँछके रूपमें शोभित हो रही है॥ ३॥

दण्डधारी भैरव इसके सींग हैं, पापमें मन रखनेवाले दुष्टोंको उन सींगोंसे यह सदा डराती रहती है। लोलार्क (कुण्ड) और त्रिलोचन (एक तीर्थ) इसके नेत्र हैं तथा कर्णघण्टा नामक तीर्थ इसके गलेका घण्टा है॥ ४॥

---

* थनोंके ऊपरका भाग जिसमें दूध भरा रहता है।

मनिकर्निका बदन-ससि सुंदर, सुरसरि-सुख सुखमा-सी।
स्वारथ परमारथ परिपूरन, पंचकोसि महिमा-सी॥ ५॥
बिस्वनाथ पालक कृपालुचित, लालति नित गिरिजा-सी।
सिद्धि, सची, सारद पूजहिं मन जोगवति रहति रमा-सी॥ ६॥
पंचाच्छरी प्रान, मुद माधव, गव्य सुपंचनदा-सी।
ब्रह्म-जीव-सम रामनाम जुग, आखर बिस्व बिकासी॥ ७॥
चारितु चरति करम कुकरम करि, मरत जीवगन घासी।
लहत परमपद पय पावन, जेहि चहत प्रपंच-उदासी॥ ८॥

मणिकर्णिका इसका चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख है, गंगाजीसे मिलनेवाला पाप-ताप-नाशरूपी सुख इसकी शोभा है। भोग और मोक्षरूपी सुखोंसे परिपूर्ण पंचकोसीकी परिक्रमा ही इसकी महिमा है॥ ५॥

दयालुहृदय विश्वनाथजी इस कामधेनुका पालन-पोषण करते हैं और पार्वती-सरीखी स्नेहमयी जगज्जननी इसपर सदा प्यार करती रहती हैं; आठों सिद्धियाँ, सरस्वती और इन्द्राणी शची इसका पूजन करती हैं; जगत्‌का पालन करनेवाली लक्ष्मी-सरीखी इसका रुख देखती रहती हैं॥ ६॥

'नमः शिवाय' यह पंचाक्षरी मन्त्र ही इसके पाँच प्राण हैं। भगवान् बिन्दुमाधव ही आनन्द हैं। पंचनदी (पंचगंगा) तीर्थ ही इसके पंचगव्य* हैं। यहाँ संसारको प्रकट करनेवाले राम-नामके दो अक्षर 'रकार' और 'मकार' इसके अधिष्ठाता ब्रह्म और जीव हैं॥ ७॥

यहाँ मरनेवाले जीवोंका सब सुकर्म और कुकर्मरूपी घास यह चर जाती है, जिससे उनको वही परमपदरूपी पवित्र दूध मिलता है, जिसको संसारके विरक्त महात्मागण चाहा करते हैं॥ ८॥

* दूध, दही, घी, गोमय और गोमूत्र।

कहत पुरान रची केसव निज कर-करतूति कला-सी।
तुलसी बसि हरपुरी राम जपु, जो भयो चहै सुपासी॥ ९॥

(विनय-पत्रिका)

४७—श्रीमणिकर्णिकाष्टकम्

त्वत्तीरे मणिकर्णिके हरिहरौ सायुज्यमुक्तिप्रदौ
वादं तौ कुरुतः परस्परमुभौ जन्तोः प्रयाणोत्सवे।
मद्रूपो मनुजोऽयमस्तु हरिणा प्रोक्तः शिवस्तत्क्षणात्
तन्मध्याद् भृगुलाञ्छनो गरुडगः पीताम्बरो निर्गतः॥ १॥
इन्द्राद्यास्त्रिदशाः पतन्ति नियतं भोगक्षये ते पुन-
र्जायन्ते मनुजास्ततोऽपि पशवः कीटाः पतङ्गादयः।

पुराणोंमें लिखा है कि भगवान् विष्णुने सम्पूर्ण कला लगाकर अपने हाथोंसे इसकी रचना की है। हे तुलसीदास! यदि तू सुखी होना चाहता है तो काशीमें रहकर श्रीराम-नाम जपा कर॥ ९॥

हे मणिकर्णिके! आपके तटपर भगवान् विष्णु और शिव सायुज्य-मुक्ति प्रदान करते हैं। [एक बार] जीवके महाप्रयाणके समय वे दोनों [उस जीवको अपने-अपने लोक ले जानेके लिये] आपसमें स्पर्धा कर रहे थे। भगवान् विष्णु शिवजीसे बोले कि यह मनुष्य अब मेरा स्वरूप हो चुका है। उनके ऐसा कहते ही वह जीव उसी क्षण भृगुके पद-चिह्नोंसे सुशोभित वक्षःस्थलवाला तथा पीताम्बरधारी होकर गरुड़पर सवार हो उन दोनोंके बीचसे निकल गया॥ १॥

इन्द्र आदि देवतागणोंका भी यथासमय पतन होता है। भोगके

ये मातर्मणिकर्णिके तव जले मज्जन्ति निष्कल्मषाः
सायुज्येऽपि किरीटकौस्तुभधरा नारायणाः स्युर्नराः ॥ २ ॥
काशी धन्यतमा विमुक्तिनगरी सालङ्कृता गङ्गया
तत्रेयं मणिकर्णिका सुखकरी मुक्तिर्हि तत्किङ्करी।
स्वर्लोकस्तुलितः सहैव विबुधैः काश्या समं ब्रह्मणा
काशी क्षोणितले स्थिता गुरुतरा स्वर्गो लघुः खे गतः ॥ ३ ॥
गङ्गातीरमनुत्तमं हि सकलं तत्रापि काश्युत्तमा
तस्यां सा मणिकर्णिकोत्तमतमा यत्रेश्वरो मुक्तिदः।

पूर्ण हो जानेपर वे पुनः मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होते हैं और उसके बाद भी पशु-कीट-पतंग आदिके रूपमें जन्म लेते हैं; किंतु हे माता मणिकर्णिके! जो मनुष्य आपके जलमें स्नान करते हैं, वे निष्पाप हो जाते हैं और सायुज्य-मुक्ति हो जानेपर किरीट तथा कौस्तुभधारी साक्षात् नारायणरूप हो जाते हैं॥ २॥

गंगासे अलंकृत विमुक्तिनगरी काशी परम धन्य है। उस काशीमें यह मणिकर्णिका परमानन्द प्रदान करनेवाली है; मुक्ति तो निश्चितरूपसे उसकी दासी है। ब्रह्माजी जब काशीको और सभी देवताओंसहित स्वर्गको तौलने लगे तब काशी [स्वर्गकी तुलनामें] भारी पड़नेके कारण पृथ्वीतलपर स्थित हो गयी और स्वर्ग हल्का पड़नेके कारण आकाशमें चला गया॥ ३॥

गंगाके सम्पूर्ण तट अत्युत्तम हैं; किंतु उनमें काशी सर्वोत्तम है। उस काशीमें वह मणिकर्णिका उत्तमोत्तम है, जहाँ मुक्ति प्रदान

देवानामपि दुर्लभं स्थलमिदं पापौघनाशक्षमं
पूर्वोपार्जितपुण्यपुञ्जगमकं पुण्यैर्जनैः प्राप्यते ॥ ४ ॥
दुःखाम्भोनिधिमग्नजन्तुनिवहास्तेषां कथं निष्कृति-
र्ज्ञात्वैतद्धि विरञ्चिना विरचिता वाराणसी शर्मदा।
लोकाः स्वर्गमुखास्ततोऽपि लघवो भोगान्तपातप्रदाः
काशी मुक्तिपुरी सदा शिवकरी धर्मार्थकामोत्तरा ॥ ५ ॥
एको वेणुधरो धराधरधरः श्रीवत्सभूषाधरो
यो ह्येकः किल शङ्करो विषधरो गङ्गाधरो माधरः।

करनेवाले साक्षात् भगवान् विश्वनाथ विराजते हैं। सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेमें समर्थ यह स्थल देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। पूर्वजन्ममें अर्जित किये गये पुण्यसमूहकी प्रतीति करानेवाला यह स्थान पुण्यशाली लोगोंको ही सुलभ हो पाता है ॥ ४ ॥

दुःख-सागरमें डूबे हुए जो प्राणिसमूह हैं उनका उद्धार कैसे हो सकेगा, यह विचार करके ब्रह्माजीने कल्याणदायिनी वाराणसीपुरीका निर्माण किया। स्वर्ग आदि प्रधान लोक भोगके पूर्ण जानेके पश्चात् पतनकी प्राप्ति करानेके कारण इस काशीसे बहुत छोटे हैं। यह काशी सदा मुक्ति प्रदान करनेवाली तथा कल्याण करनेवाली है। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थचतुष्टय प्रदान करती है ॥ ५ ॥

मुरली धारण करनेवाले, गोवर्धनपर्वत धारण करनेवाले तथा वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्न धारण करनेवाले विष्णु एक ही हैं, उसी प्रकार कण्ठमें विष धारण करनेवाले अपनी जटामें गंगाको धारण

ये मातर्मणिकर्णिके तव जले मज्जन्ति ते मानवा
रुद्रा वा हरयो भवन्ति बहवस्तेषां बहुत्वं कथम्॥ ६॥
त्वत्तीरे मरणं तु मङ्गलकरं देवैरपि श्लाघ्यते
शक्रस्तं मनुजं सहस्रनयनैर्द्रष्टुं सदा तत्परः।
आयान्तं सविता सहस्रकिरणैः प्रत्युद्गतोऽभूत्सदा
पुण्योऽसौ वृषगोऽथवा गरुडगः किं मन्दिरं यास्यति॥ ७॥
मध्याह्ने मणिकर्णिकास्नपनजं पुण्यं न वक्तुं क्षमः
स्वीयैः शब्दशतैश्चतुर्मुखसुरो वेदार्थदीक्षागुरुः।

करनेवाले और अर्द्धांगमें उमाको धारण करनेवाले जो भगवान् शंकर हैं, वे भी एक ही हैं; किंतु हे माता मणिकर्णिके! जो मनुष्य आपके जलमें अवगाहन करते हैं, वे सभी रुद्र तथा विष्णुस्वरूप हो जाते हैं, उनके बहुत्वके विषयमें क्या कहा जाय!॥ ६॥

[हे मातः!] आपके तटपर होनेवाली मंगलकारी मृत्युकी तो देवता भी सराहना करते हैं। देवराज इन्द्र अपने हजार नेत्रोंसे उस मनुष्यका दर्शन करनेके लिये सदा लालायित रहते हैं। सूर्यदेव भी उस जीवको आता हुआ देखकर अपनी हजार किरणोंसे उसके सम्मानके लिये सदा उसकी ओर बढ़ते हैं। [यह देखकर देवतागण सोचते हैं कि] वृषभपर सवार होकर अथवा गरुड़पर आसीन होकर यह पुण्यात्मा जीव [कैलास अथवा वैकुण्ठ] न जाने किस लोकमें जायगा?॥ ७॥

वेदार्थतत्त्वकी दीक्षा देनेवाले गुरुस्वरूप चतुर्मुख ब्रह्मदेव अपने

योगाभ्यासबलेन चन्द्रशिखरस्तत्पुण्यपारं गत-

स्त्वत्तीरे प्रकरोति सुप्तपुरुषं नारायणं वा शिवम् ॥ ८ ॥

कृच्छ्रैः कोटिशतैः स्वपापनिधनं यच्चाश्वमेधैः फलं

तत्सर्वं मणिकर्णिकास्नपनजे पुण्ये प्रविष्टं भवेत्।

स्नात्वा स्तोत्रमिदं नरः पठति चेत्संसारपाथोनिधिं

तीर्त्वा पल्वलवत्प्रयाति सदनं तेजोमयं ब्रह्मणः ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीमणिकर्णिकाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

सैकड़ों शब्दोंसे भी मध्याह्नकालमें मणिकर्णिकाके स्नानजन्य पुण्यका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं। केवल चन्द्रमौलि भगवान् शिव अपने योगाभ्यासके बलसे उस पुण्यको जानते हैं तथा [हे माता!] वे ही आपके तटपर मृत्युको प्राप्त पुरुषको साक्षात् नारायण अथवा शिव बना देते हैं ॥ ८ ॥

करोड़ों-करोड़ों कृच्छ्र आदि प्रायश्चित्त व्रतोंसे जो पापका नाश होता है तथा अश्वमेधयज्ञोंसे जो फल प्राप्त होता है, वह सब मणिकर्णिकामें स्नान करनेसे प्राप्त पुण्यमें समाविष्ट हो जाता है। यदि मनुष्य [वहाँ] स्नान करके इस स्तोत्रका पाठ करे तो वह संसारसागरको एक छोटे-से तालाबकी भाँति पार करके तेजोमय ब्रह्मलोकमें पहुँच जाता है ॥ ९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित श्रीमणिकर्णिकाष्टक सम्पूर्ण हुआ ॥

गङ्गास्तोत्राणि

४८—श्रीगङ्गाष्टकम्

मातः शैलसुतासपत्नि वसुधाशृङ्गारहारावलि
स्वर्गारोहणवैजयन्ति भवतीं भागीरथि प्रार्थये।
त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बु पिबतस्त्वद्वीचिषु प्रेङ्खत-
स्त्वन्नाम स्मरतस्त्वदर्पितदृशः स्यान्मे शरीरव्ययः ॥ १ ॥
त्वत्तीरे तरुकोटरान्तरगतो गङ्गे विहङ्गो वरं
त्वन्नीरे नरकान्तकारिणि वरं मत्स्योऽथवा कच्छपः।
नैवान्यत्र मदान्धसिन्धुरघटासङ्घट्टघण्टारण-
त्कारत्रस्तसमस्तवैरिवनितालब्धस्तुतिर्भूपतिः ॥ २ ॥

पृथ्वीकी शृंगारमाला, पार्वतीजीकी सपत्नी और स्वर्गारोहणके लिये वैजयन्ती पताकारूपिणी हे माता भागीरथि! मैं तुमसे यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारे तटपर निवास करते हुए, तुम्हारे जलका पान करते हुए, तुम्हारी तरंगभंगीमें तरंगायमान होते हुए, तुम्हारा नामस्मरण करते हुए और तुम्हींमें दृष्टि लगाये हुए, मेरा शरीरपात हो ॥ १ ॥

हे गंगे! तुम्हारे तटवर्ती तरुवरके कोटरमें पक्षी होकर रहना अच्छा है तथा हे नरकनिवारिणि! तुम्हारे जलमें मत्स्य या कच्छप होकर जन्म लेना भी बहुत अच्छा है, किंतु दूसरी जगह मदमत्त गजराजोंके जमघटके घण्टारवसे भयभीत हुई शत्रुमहिलाओंसे स्तुत पृथ्वीपति भी होना अच्छा नहीं ॥ २ ॥

उक्षा पक्षी तुरग उरगः कोऽपि वा वारणो वा
वारीणः स्यां जननमरणक्लेशदुःखासहिष्णुः।
न त्वन्यत्र प्रविरलरणत्कङ्कणक्वाणमिश्रं
वारस्त्रीभिश्चमरमरुता वीजितो भूमिपालः॥ ३॥
काकैर्निष्कुषितं श्वभिः कवलितं गोमायुभिर्लुण्ठितं
स्रोतोभिश्चलितं तटाम्बुलुलितं वीचीभिरान्दोलितम्।
दिव्यस्त्रीकरचारुचामरमरुत्संवीज्यमानः कदा
द्रक्ष्येऽहं परमेश्वरि त्रिपथगे भागीरथि स्वं वपुः॥ ४॥
अभिनवबिसवल्ली पादपद्मस्य विष्णो-
र्मदनमथनमौलेर्मालतीपुष्पमाला।

हे मातः! मैं भले ही आपके आर-पार रहनेवाला जन्म-मरणरूप क्लेशको सहन न करनेवाला कोई बैल, पक्षी, घोड़ा, सर्प अथवा हाथी हो जाऊँ, किंतु [आपसे दूर] किसी अन्य स्थानपर ऐसा राजा भी न होऊँ, जिसपर वाराङ्गनाएँ मन्द-मन्द झनकारते हुए कंकणोंकी सुमधुर ध्वनिसे युक्त चमर डुला रही हों॥ ३॥

हे परमेश्वरि! हे त्रिपथगे! हे भागीरथि! [मरनेके अनन्तर] देवाङ्गनाओंके करकमलोंमें सुशोभित सुन्दर चमरोंकी हवासे सेवित हुआ मैं अपने मृत शरीरको कौओंसे कुरेदा जाता हुआ, कुत्तोंसे भक्षित होता हुआ, गीदड़ोंसे लुण्ठित होता हुआ, तुम्हारे स्रोतमें पड़कर बहता हुआ, कभी किनारेके स्वच्छ जलमें हिलता हुआ और फिर तरंगभंगियोंसे आन्दोलित होता हुआ कब देखूँगा?॥ ४॥

जो भगवान् विष्णुके चरणकमलका नूतन मृणाल (कमलनाल) है तथा कामारि त्रिपुरारिके ललाटकी मालती-माला है, वह मोक्षलक्ष्मीकी

जयति जयपताका काप्यसौ मोक्षलक्ष्म्याः
 क्षपितकलिकलङ्का जाह्नवी नः पुनातु ॥ ५ ॥
एतत्तालतमालसालसरलव्यालोलवल्लीलता-
 च्छन्नं सूर्यकरप्रतापरहितं शङ्खेन्दुकुन्दोज्ज्वलम्।
गन्धर्वामरसिद्धकिन्नरवधूतुङ्गस्तनास्फालितं
 स्नानाय प्रतिवासरं भवतु मे गाङ्गं जलं निर्मलम् ॥ ६ ॥
गाङ्गं वारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम्।
त्रिपुरारिशिरश्चारि पापहारि पुनातु माम् ॥ ७ ॥
पापापहारि दुरितारि तरङ्गधारि
 शैलप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि।

विलक्षण विजयपताका जयको प्राप्त हो। कलिकलंकको नष्ट करनेवाली, वह जाह्नवी हमें पवित्र करें ॥ ५ ॥

जो ताल, तमाल, साल, सरल तथा चंचल वल्लरी और लताओंसे आच्छादित है, सूर्यकिरणोंके तापसे रहित है, शंख, कुन्द और चन्द्रके समान उज्ज्वल है तथा गन्धर्व, देवता, सिद्ध और किन्नरोंकी कामिनियोंके पीन पयोधरोंसे आस्फालित (टकराया हुआ) है, वह अत्यन्त निर्मल गंगाजल नित्यप्रति मेरे स्नानके लिये हो ॥ ६ ॥

जो श्रीमुरारिके चरणोंसे उत्पन्न हुआ है, श्रीशंकरके सिरपर विराजमान है तथा सम्पूर्ण पापोंको हरण करनेवाला है, वह मनोहर गंगाजल मुझे पवित्र करे ॥ ७ ॥

जो पापोंको हरण करनेवाला, दुष्कर्मोंका शत्रु, तरंगमय, शैल-खण्डोंपर बहनेवाला, पर्वतराज हिमालयकी गुहाओंको विदीर्ण करनेवाला,

झङ्कारकारि हरिपादरजोऽपहारि
गाङ्गं पुनातु सततं शुभकारि वारि ॥ ८ ॥
गङ्गाष्टकं पठति यः प्रयतः प्रभाते
वाल्मीकिना विरचितं शुभदं मनुष्यः।
प्रक्षाल्य गात्रकलिकल्मषपङ्कमाशु
मोक्षं लभेत् पतति नैव नरो भवाब्धौ ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमहर्षिवाल्मीकिविरचितं श्रीगङ्गाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

४९—श्रीगङ्गाष्टकम्

भगवति तव तीरे नीरमात्राशनोऽहं
विगतविषयतृष्णः कृष्णमाराधयामि।

मधुर कलकल-ध्वनियुक्त और श्रीहरिकी चरणरजको धोनेवाला है, वह निरन्तर शुभकारी गंगाजल मुझे पवित्र करे ॥ ८ ॥

जो पुरुष वाल्मीकिजीके रचे हुए इस कल्याणप्रद गंगाष्टकको प्रातःकाल एकाग्रचित्तसे पढ़ता है, वह अपने शरीरके कलिकल्मषरूप कीचड़को धोकर शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करता है और फिर संसार-समुद्रमें नहीं गिरता ॥ ९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमहर्षिवाल्मीकिविरचित श्रीगङ्गाष्टक सम्पूर्ण हुआ ॥

हे देवि! तुम्हारे तीरपर केवल तुम्हारे जलका पान करता हुआ, विषय-तृष्णासे रहित हो, मैं श्रीकृष्णचन्द्रकी आराधना करूँ।

सकलकलुषभङ्गे स्वर्गसोपानसङ्गे
तरलतरतरङ्गे देवि गङ्गे प्रसीद ॥ १ ॥
भगवति भवलीलामौलिमाले तवाम्भः-
कणमणुपरिमाणं प्राणिनो ये स्पृशन्ति।
अमरनगरनारीचामरग्राहिणीनां
विगतकलिकलङ्कातङ्कमङ्के लुठन्ति ॥ २ ॥
ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती
स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती।
क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमूर्निर्भरं भर्त्सयन्ती
पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित्पावनी नः पुनातु ॥ ३ ॥
मज्जन्मातङ्गकुम्भच्युतमदमदिरामोदमत्तालिजालं
स्नानैः सिद्धाङ्गनानां कुचयुगविगलत्कुङ्कुमासङ्गपिङ्गम्।

हे सकल पापविनाशिनि! स्वर्गसोपानरूपिणि! तरलतरतरंगिणि! देवि गंगे! मुझपर प्रसन्न हो ॥ १ ॥

हे भगवति! तुम महादेवजीके मस्तककी लीलामयी माला हो, जो प्राणी तुम्हारे जलकणके अणुमात्रको भी स्पर्श करते हैं, वे कलिकलंकके भयको त्यागकर, देवपुरीकी चँवरधारिणी अप्सराओंकी गोदमें शयन करते हैं ॥ २ ॥

ब्रह्माण्डको फोड़कर निकलनेवाली, महादेवजीकी जटा-लताको उल्लसित करती हुई, स्वर्गलोकसे गिरती हुई, सुमेरुकी गुफा और पर्वतमालासे झड़ती हुई, पृथ्वीपर लोटती हुई, पापसमूहकी सेनाको कड़ी फटकार देती हुई, समुद्रको भरती हुई, देवपुरीकी पवित्र नदी गंगा हमें पवित्र करें ॥ ३ ॥

स्नान करते हुए हाथियोंके कुम्भस्थलसे झरते हुए मदरूपी मदिराकी गन्धके कारण मधुपवृन्द जिसमें मतवाले हो रहे हैं, सिद्धोंकी स्त्रियोंके स्तनोंसे बहे हुए कुंकुमके मिलनेसे जो पिंगलवर्ण हो रहा है तथा

सायंप्रातर्मुनीनां कुशकुसुमचयैश्छन्नतीरस्थनीरं
पायान्नो गाङ्गमम्भः करिकलभकराक्रान्तरंहस्तरङ्गम् ॥ ४ ॥
आदावादिपितामहस्य नियमव्यापारपात्रे जलं
पश्चात्पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम्।
भूयः शम्भुजटाविभूषणमणिर्जह्नोर्महर्षेरियं
कन्या कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते ॥ ५ ॥
शैलेन्द्रादवतारिणी निजजले मज्जज्जनोत्तारिणी
पारावारविहारिणी भवभयश्रेणीसमुत्सारिणी।
शेषाहेरनुकारिणी हरशिरोवल्लीदलाकारिणी
काशीप्रान्तविहारिणी विजयते गङ्गा मनोहारिणी ॥ ६ ॥

सायं-प्रातः मुनियोंद्वारा अर्पित कुश और पुष्पोंके समूहसे जो किनारेपर ढका हुआ है, हाथियोंके बच्चोंकी सूँड़से जिसकी तरंगोंका वेग आक्रान्त हो रहा है, वह गंगाजल हमारा कल्याण करे ॥ ४ ॥

जह्नु महर्षिकी कन्या, पापनाशिनी भगवती भागीरथी, पहले ब्रह्माके कमण्डलुमें जलरूपसे, फिर शेषशायी भगवान्‌के पवित्र चरणोदकरूपसे और पुनः महादेवजीकी जटाको सुशोभित करनेवाली मणिरूपसे दीख रही है ॥ ५ ॥

हिमालयसे उतरनेवाली, अपने जलमें गोता लगानेवालोंका उद्धार करनेवाली, समुद्रविहारिणी, संसार-संकटोंका नाश करनेवाली, [विस्तारमें] शेषनागका अनुकरण करनेवाली, शिवजीके मस्तकपर लताके समान सुशोभित, काशीक्षेत्रमें बहनेवाली, मनोहारिणी गंगाजी विजयिनी हो रही हैं ॥ ६ ॥

कुतो वीचिर्वीचिस्तव यदि गता लोचनपथं
त्वमापीता पीताम्बरपुरनिवासं वितरसि।
त्वदुत्सङ्गे गङ्गे पतति यदि कायस्तनुभृतां
तदा मातः शातक्रतवपदलाभोऽप्यतिलघुः॥ ७॥
गङ्गे त्रैलोक्यसारे सकलसुरवधूधौतविस्तीर्णतोये
पूर्णब्रह्मस्वरूपे हरिचरणरजोहारिणी स्वर्गमार्गे।
प्रायश्चित्तं यदि स्यात्तव जलकणिका ब्रह्महत्यादिपापे
कस्त्वां स्तोतुं समर्थस्त्रिजगदघहरे देवि गङ्गे प्रसीद॥ ८॥
मातर्जाह्नवि शम्भुसङ्गवलिते मौलौ निधायाञ्जलिं
त्वत्तीरे वपुषोऽवसानसमये नारायणाङ्घ्रिद्वयम्।

यदि तुम्हारी तरंग नेत्रोंके सामने आ जाय, तो फिर संसारकी तरंग कहाँ रह सकती है? तुम्हारे थोड़े-से जलका पान करनेपर तुम वैकुण्ठलोकमें निवास देती हो, हे गंगे! यदि जीवोंका शरीर तुम्हारी गोदमें छूट जाता है, तो हे मातः! उस समय इन्द्रपदकी प्राप्ति भी अत्यन्त तुच्छ मालूम होती है॥ ७॥

तीनों लोकोंकी सार, सर्वदेवांगनाएँ जिसमें स्नान करती हैं, ऐसे विस्तृत जलवाली, पूर्ण ब्रह्मस्वरूपिणी, स्वर्ग-मार्गमें भगवान्के चरणोंकी धूलि धोनेवाली हे गंगे! जब तुम्हारे जलका एक कणमात्र ही ब्रह्महत्यादि पापोंका प्रायश्चित्त है तो हे त्रैलोक्यपापनाशिनि! तुम्हारी स्तुति करनेमें कौन समर्थ है? हे देवि गंगे! प्रसन्न हो॥ ८॥

हे शिवकी संगिनी मातः गंगे! शरीर शान्त होनेके समय प्राण-यात्राके उत्सवमें, तुम्हारे तीरपर, सिर नवाकर हाथ जोड़े हुए,

सानन्दं स्मरतो भविष्यति मम प्राणप्रयाणोत्सवे
भूयाद्भक्तिरविच्युता हरिहराद्वैतात्मिका शाश्वती ॥ ९ ॥
गङ्गाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतो नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १० ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीगङ्गाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

५०—श्रीगङ्गास्तोत्रम्

देवि सुरेश्वरि भगवति गङ्गे त्रिभुवनतारिणि तरलतरङ्गे ।
शङ्करमौलिविहारिणि विमले मम मतिरास्तां तव पदकमले ॥ १ ॥
भागीरथि सुखदायिनि मातस्तव जलमहिमा निगमे ख्यातः ।
नाहं जाने तव महिमानं पाहि कृपामयि मामज्ञानम् ॥ २ ॥

आनन्दसे भगवान्‌के चरणयुगलका स्मरण करते हुए मेरी अविचल-भावसे हरि-हरमें अभेदात्मिका नित्य भक्ति बनी रहे ॥ ९ ॥

जो पुरुष शुद्ध होकर इस पवित्र श्रीगंगाष्टकका पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर वैकुण्ठलोकमें जाता है ॥ १० ॥

॥ इस प्रकार श्रीमत् शंकराचार्यविरचित श्रीगंगाष्टक सम्पूर्ण हुआ ॥

हे देवि गंगे! तुम देवगणकी ईश्वरी हो, हे भगवति! तुम त्रिभुवनको तारनेवाली, विमल और तरल तरंगमयी तथा शंकरके मस्तकपर विहार करनेवाली हो। हे मातः! तुम्हारे चरणकमलोंमें मेरी मति लगी रहे ॥ १ ॥

हे भागीरथि! तुम सब प्राणियोंको सुख देती हो, हे मातः! वेद-शास्त्रमें तुम्हारे जलका माहात्म्य वर्णित है; मैं तुम्हारी महिमा कुछ नहीं जानता, हे दयामयि! मुझ अज्ञानीकी रक्षा करो ॥ २ ॥